

रु. 20.00

नवम्बर–दिसम्बर, 1993

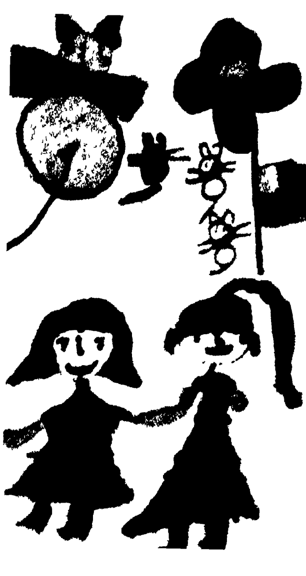


100 वीं चकमक





अमिता पाडे, छह वर्ष, नई दिल्ली



100 वीं चकमक का मतलब है कि चकमक की उम्र अब सवा आठ साल हो गई है। साथ ही जो लोग यहाँ चकमक निकालते हैं, वे भी सवा आठ साल और बड़े हो गए हैं। जब लोग उम्र में बडे हो जाते हैं तो ज्यादा ऊँची यानी बड़ेपन की बाते करने लगते हैं। जैसे हम भी चाहते है कि तुमको बताएँ कि इन सौ अको को निकालने मे कैसे-कैसे पापड बेलने पडे हैं, क्या दिक्क़तें आईं, तुम्हारे सहयोग का धन्यवाद वगैरह-वगैरह। लेकिन यह रोना-धोना तो वक़्त-बेवक्त चलता ही रहता है और इसको औपचारिकता निभाना जैसा नाम बड़ों ने दिया है। लेकिन हम न तो खुद बोर होना चाहते हैं और न तुम्हें करने की इच्छा है।

लेकिन एक चिंता ज़रूर तुम्हारे साथ बॉटना चाहते हैं। चकमक अपने जन्म से लगातार ग्रामीण बच्चों से ही ज्यादा बातचीत करती रही है। वह कुछ-कुछ देश के उस औसत बच्चे के समान ही है, जिसके सामने सीमित साधनो के सहारे अधिक सपन्न घर के बच्चो के मुकाबले समाज में अपनी जगह बनाने की कठिन चुनौती है। पैसा और सिर्फ पैसा कमाने के लिए बच्चो के नाम पर हो रहे प्रकाशन व 'टेलीविजनों' की चकाचौंध के बीच चकमक ने लड़खड़ाते हुए इन सवा आठ सालों में कुछ कदम चलना सीखा है। लेकिन अगर कॉम्पिटिशन (होड) बढता ही गया तो क्या चकमक ड्रॉप-आउट (होड से बाहर) होने से बचेगी?

अच्छा छोड़ो अभी इस फिक्र को। अभी हम तुम्हे यह बताएँ कि इस विशेष अक को बनाने में पसीना छूटने के साथ-साथ मजा भी बहुत आया। पहले तो तुम्हारी रचनाओं का पहाड़ ही बन गया। बड़ो ने भी इस बार ग़ज़ब किया। चकमक में नियमित रूप से लिखने वाले लोगों के अलावा हमने जिन अन्य को अपनी रचनाएँ, चित्र, कलाकृति आदि भेजने के लिए लिखा उनमें से काफी लोगों ने हमें अच्छी चीज़ें भेजीं। मलयालम में लिखने वाले कृष्ण कुमार ने तो कमाल ही कर दिया– उन्होंने हिन्दी में अपनी पहली कविता चकमक के लिए ही लिखी– गुल्लू गुड़िया। गुलज़ार, अमृतराय, जयंत नार्लीकर... सबने इस अंक के लिए कुछ न कुछ लिखा।

इस सबका फायदा हमें ज़रूर हुआ– हमें इस अंक के लिए कुछ विशेष नहीं लिखना पड़ा। पर हाँ, सम्पादन में जान निकल गई। लेकिन हम सब तो तुम्हारे लिए ही हैं। अगले अंक से फिर हमें कलम चलानी होगी। काश, इस देश में बच्चों के लिए अच्छा लिखने वालों की– ख़ासकर हिन्दी में– गिनती बढ़ जाती तो हमारा काम कुछ बँट जाता। इस अंक से कुछ उम्मीद बंधी तो है– देखते हैं 200 वें अंक तक क्या होता है!

❑ ***चकमक टीम***

चकमक
मासिक बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष-9 अंक 5-6 नव.-दिस. 1993

विनोद रायना
सह-संपादक
राजेश उत्साही
कविता सुरेश
संपादन सहयोग
टुलटुल बिस्वास
कला-सज्जा
जया विवेक
उत्पादन/वितरण
कमलसिंह, मनोज निगम

चकमक का चंदा
एक प्रति : पांच रुपए
छमाही : पच्चीस रुपए
वार्षिक : पचास रुपए
डाक खर्च मुफ्त
चंदा, मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट से एकलव्य के नाम पर भेजें।
कृपया चेक न भेजें।

कागज़ : यूनिसेफ के सौजन्य से।

पत्र/चंदा/रचना भेजने का पता
एकलव्य,
ई-1/208,
अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462016
(म. प्र.)
फ़ोन : 563380

यह अंक रुपए बीस।

सौवें अंक में...

श्रीप्रसाद, स्नेहलता गुप्ता, गिरिजा कुलश्रेष्ठ, दिविक रमेश, अभिषेक दुबे, दशरथ कुमार सुथार, विवेक तिवारी, भगवतीप्रसाद द्विवेदी, राष्ट्रबन्धु, कृष्ण कुमार, बसन्त तिवारी, हरीश निगम, अशोक अंजुम, लाल्टू, गीता सोलंकी, निर्मित कुमार व्यास और कमला भसीन की *कविताएँ* ।

❑

विकल्प मिश्रा, चारु नागपाल, सौम्या सुरेश, राजेश कुमार, रविप्रकाश मादावत, कपिल व्यास, गुलज़ार, अचरज प्रकाश, अभिमन्यु आदित्यसिंह, मनरोलीफ़, अमृतराय, विशाल, विवेक कहार, विनोद वर्मा, अदिति अग्रवाल, विवेक कुलश्रेष्ठ और अनुरुचि पांडे की *कहानियाँ* ।

❑

भारत रत्न भार्गव का *नाटक* ।

❑

कविता सुरेश, अनीता रामपाल, रोहन अग्रवाल, जयंत नार्लीकर, दीप्ति वैद्य, शशि सबलोक, सुशील जोशी, हरिकृष्ण देवसरे, स्वाति स्याग और टीना मिश्रा के *लेख* ।

❑

कविता, विवेक, स्वाति चौहान, भट्टी राजीव कुमार, बृजमोहनप्रसाद, शोभा श्रीवास्तव, हरचन्दनसिंह भट्टी, अलिन्द, श्रुतिप्रिया, विपुल जैन, अर्पित जैन, प्रदीप पंकज, आदित्यसिंह, लक्ष्मी, संदीप शर्मा, गरिमा तिवारी, विश्येन सोनेजी, फ़रहान मुजीब, विष्णु चिंचालकर, हुताराम अधिकारी, जनगढ़सिंह श्याम, नर्मदाप्रसाद, भूरीबाई, राजुला शाह, किशोर उमरेकर, शोभा घारे, कैरन हेडॉक, वृन्दा, आनंदसिंह श्याम, सुनयनासिंह, यशोधन गंदगे, प्रियंवदा, रूचि जैन, रुश्ती, थांग सांग मोसांग, मनरोलीफ़, जया, निर्मल कुमार गोयल, ऋचा, आशा शर्मा, मोहम्मद मुस्तफ़ा, पालकी कोहली, जसवन्तसिंह, राकेश माली, राजेश नागौरी, सुमित कुमार, स्नेहा चौधरी, नितेश भाटिया, प्रियंका भागवत, पीयूष भागवत, रोशन सरेल, महिमाकपूर, मनिषा हाटेकर, योगेश रघुवंशी, नरेन्द्र कुमार, गोपाल अग्रवाल, शिवेन्द्र पांडिया, स्वाति स्याग, शिखा कहार, सत्यनारायण, बसन्त तिवारी, दीपक विश्नोई, मोनू जोशी, भारतसिंह और रामविलास के *चित्र* और *कलाकृतियाँ* ।

आवरण परिचय पिछले आवरण के अंदर के पृष्ठ पर देखें।

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

दीपक की जलती है लौ
खेतों में [redacted]
चकमक हो गए पूरे सौ

❑ राजनदेव महन्त, नवमी, घरघोड़ा, रायगढ़, म.प्र.

सौवें चकमक का स्वागत
बिछुड़े साथी का स्वागत

इसी तरह बाधाओं को तुम पार करो
चकमक ज्योति जला अँधियारा दूर करो
बढते-बढते पहुँचो एक हज़ार तक
बच्चों को दो ज्ञान तर्क से सम्मत

सच्चाई को समझें-परखें
प्रश्न पूछने से न डरें
मन के रखें कपाट खुले
जिज्ञासा नित नई जगे

धरती का मन हो विस्तृत
मित्र तुम्हारा है स्वागत!

❑ सुधा चौहान, इलाहाबाद, उ.प्र.

चकमक का सौवाँ अंक निकल रहा है यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई। यह सब आप सबके उत्साह और सहयोग का फल है जिसके लिए आप बधाई के पात्र हैं। चकमक ने इस युग के बच्चों को उनका खोया-सा जा रहा अपना संसार दिलाने में जो योगदान किया है, वह सर्वथा सराहनीय है।

❑ निरंकारदेव सेवक, बरेली, उ.प्र.

इतनी लम्बी अवधि तक बाल पत्रिका का प्रकाशन निश्चय ही आपकी निष्ठा का सुफल है।

❑ डॉ. सुरेन्द्र विक्रम, लखनऊ, उ.प्र.

चकमक ने बालकों के मन में विज्ञान के स्फुलिंग उत्पन्न किए हैं, वैज्ञानिक और तार्किक तेवर को बढावा दिया है, बालक में छिपी प्रतिभा को उभाड़ा है।

❑ डॉ. श्रीप्रसाद, वाराणसी, उ.प्र.

चकमक मैं देखता रहा हूँ। एक सार्थक रचनात्मक मुहिम है बच्चों के लिए।

❑ यश मालवीय, इलाहाबाद, उ.प्र.

चकमक का सौवाँ अंक प्रकाशित हो रहा है, यह जानकर खुशी हुई। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ उसके दीर्घ और सफल जीवन के लिए स्वीकार करें।

मैं चकमक दो-तीन साल तक मँगाता रहा, फिर पता नहीं कैसे अचानक बन्द हो गई। आपने चंदा माँगा नहीं और मुझे स्वयं इस बात का ध्यान नहीं रहा। यह एक अच्छी पत्रिका है। मुझे बडी खुशी होती अगर मैं इसके लिए कुछ लिख पाता। लेकिन मैं इधर काफ़ी दिनों से अस्वस्थ हूँ। आँखों की ज्योति कम हो गई है और सिर में निरन्तर दर्द रहता है। इसलिए लिखना प्राय: बन्द है, विशेषकर किसी के कहने पर। आयु का प्रभाव भी है। जीवन के 82वें वर्ष में शक्ति क्षीण हो ही जाती है, इसलिए मैं क्षमा चाहता हूँ। पत्रिका मुझे मिल गई है। कभी कुछ लिख सका तो अवश्य भेजूंगा।

❑ विष्णु प्रभाकर, दिल्ली

आपने देश के बच्चों के लिए चकमक को एक असाधारण मंच बना दिया, इसके पीछे आपकी सम्पादकीय दृष्टि एवं निष्ठा की प्रशंसा की जानी चाहिए। यों, पत्रिकाएँ कई निकल रहीं हैं, किन्तु बाल साहित्य को लेकर कोई भी गम्भीर दिखाई नहीं देता। सस्ती लोकप्रियता एवं व्यावसायिकता के इस अत्यंत शर्मनाक युग में चकमक ने बाल मनोविज्ञान तथा बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टि के विकास के लिए जो सार्थक पहल की है, वह उल्लेखनीय है।

चकमक के सौ अंक पूरे हो रहे हैं, यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, बधाई!

❑ कैलाश मण्डलेकर, खण्डवा, म.प्र.

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि चकमक अपने सार्थक अस्तित्व के सौ अंक पूरे करने जा रहा है।

❑ डॉ. रमेशचंद्र शाह, भोपाल, म.प्र.

चकमक को सौ अंक तक ले आने के लिए बधाई। उम्मीद है पत्रिका और ज़्यादा बेहतर होती जाएगी और अपनी ख़ामियों से उबरेगी।

❑ डॉ. प्रकाश कान्त, अरलावदा, देवास, म.प्र.

नई-नई रचना कर डालो
चाहे कथा-कहानी हो
चित्र बनाओ या आकृतियाँ
वस्तु नई या पुरानी हो
नई बात बतलाओ भैया
यह संदेश है चकमक का।

❑ कविता, दस वर्ष, गजमा, रायगढ़, म.प्र.

एक पत्र तुम्हारे नाम

प्रिय दोस्तो,

मैं हूँ एक पोस्ट बॉक्स। नम्बर तो कोई नहीं है मेरा, लेकिन नाम ज़रूर है 'चकमक पोस्ट बॉक्स।' रहता हूँ तुम्हारी प्रिय चकमक के दफ़्तर की एक दीवार पर। दोस्त हूँ तुम सबका कई सालों से हालाँकि बात मैं तुमसे पहली बार ही कर रहा हूँ। असल में हूँ तो मैं बहुत बातूनी लेकिन 'चकमक' में काम करने वाले तुम्हारे भैया-दीदी मुझे कभी बोलने ही नहीं देते।

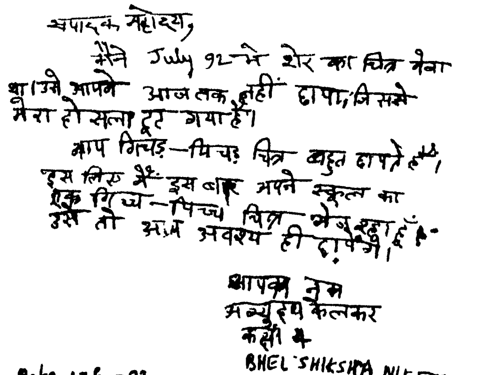
अब भई यह न सोचने लगना कि मेरा तो मुँह ही नहीं, मैं बोलूंगा कैसे? तो दोस्तो, ऐसी बातें सोचने से तो कहानी का मज़ा ही ख़राब हो जाएगा। और मज़े के लिए किसी अनहोनी को होनी मान ही लिया तो कौन चाँद पर बैठी नानी अम्मा चरखा चलाना छोड़कर चूल्हा-चौका करने लगेगी? फिर है तो यह भी सिर्फ़ मानी हुई बात ही। तो मान गए न कि मेरा मुँह है और मैं बातें कर सकता हूँ? अब ज़रा यह भी मान लो कि मेरी आँखें हैं, जिनसे मैं देख और पढ़ सकता हूँ, दिमाग़ भी है जिससे सोच सकता हूँ .... भाई अगर दीवारों के कान हो सकते हैं तो मेरे क्यों नहीं?

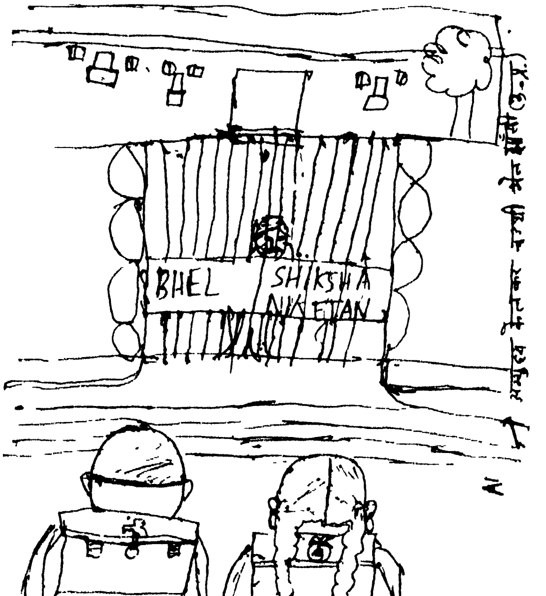
तो साथियो, क़िस्सा यह है कि मैं बरसों से तुम सबकी चिट्ठियॉं, कहानियाँ, कविताएँ पढ़ रहा हूँ। सच, बहुत मज़ा आता है मुझे यह सब पढ़कर हालॉंकि जब तुम शिकायती चिट्ठियॉं भेजते हो तो दुख भी बहुत होता है। गुस्सा आता है तुम्हारे उन भैया-दीदियों पर जो बड़े सम्पादक बने बैठे रहते हैं। गुरू हैं सबके सब! हमेशा अकड़े रहते हैं यह सोच-सोचकर :

"गुरू कुम्भार, सिस कुम्भ है,
गढ़-गढ़ काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै,
बाहिर मारै चोट!"

जैसे ख़ुद तो कभी बच्चे थे ही नहीं। बड़े आए।

लेकिन दोस्तो, बुरा न मानना, तुम्हारी कई कविताएँ, कहानियाँ और चित्र तो मुझे भी अच्छे नहीं लगते। ख़ासकर वे तो बिल्कुल भी नहीं जो तुम यहाँ-वहाँ से देख-पढ़कर अपने नाम से लिख बनाकर भेज देते हो। यह तो वही बात हुई न कि मैं तुम्हारी प्यारी-सी सूरत चुरा लूँ और आकर तुम्हारे घर में रहने लगूँ और तुम्हें लटका दूँ अपनी जगह दीवार पर। ज़रा सोचो कितना दुख होगा तुम्हें अपनी सूरत ही चोरी चले जाने पर। जैसे सूरत हम सबकी अपनी-अपनी पहचान है, वैसे ही रचनाकार की पहचान होती हैं उनकी रचनाएँ। किसी कवि, लेखक या चित्रकार को अपनी अलग पहचान बनाने में बरसों का समय लगता है। समय होता है दुनिया को देखने, समझने और अच्छी-अच्छी बातें, अच्छे-अच्छे काम सीखने और करने के लिए। और तुम्हारे पास तो अभी


सम्पादक महोदय,
मैंने July 92 में शेर का चित्र भेजा था। उसे आपने आज तक नहीं छापा, जिससे मेरा हौसला टूट गया है।
आप गिच्चड़-पिच्चड़ चित्र बहुत छापते हैं, इस लिए मैं इस बार अपने स्कूल का एक गिच्च-पिच्च चित्र भेज रहा हूँ। उसे तो आप अवश्य ही छापेंगे।
आपका प्रेम
अभ्युदय केलकर
कक्षा 4
BHEL SHIKSHA NIKETAN
Date-13-6-93



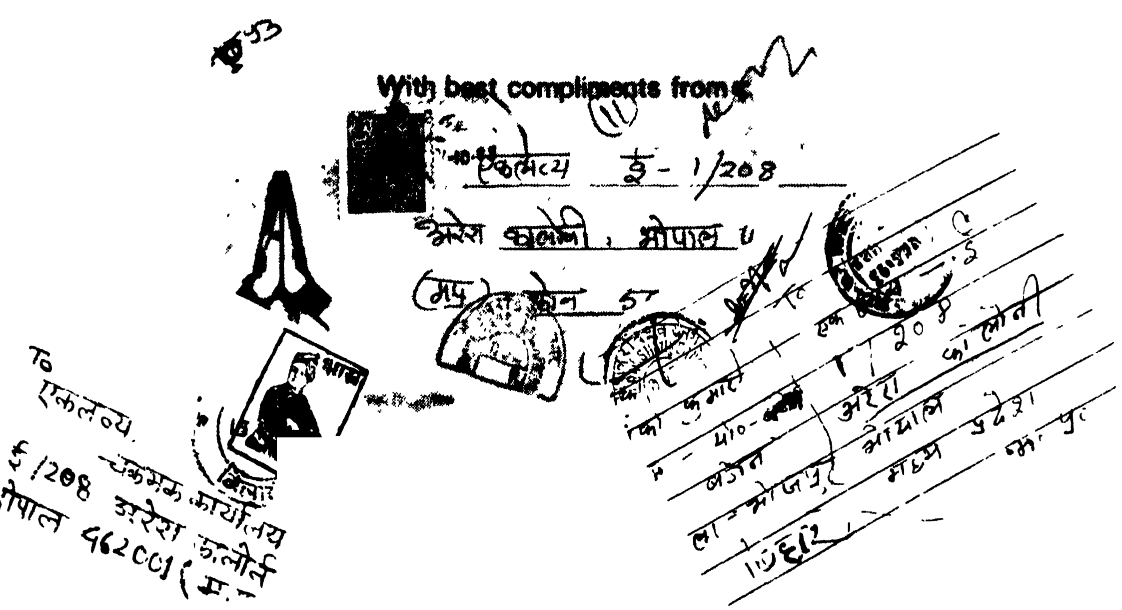
बहुत-बहुत समय है। क्या हुआ अगर तुम्हारी कोई कविता या कहानी या चित्र यहाँ भैया-दीदी को अच्छे नहीं लगे। मैं एक बात बताऊँ, ये सब के सब तुममें से हर एक को बहुत-बहुत प्यार करते हैं। अगर ये तुम्हें तुम्हारी ग़लतियों-कमियों के लिए डाँटते-समझाते हैं तो तुम्हारी हर अच्छी रचना के लिए जी-भर कर तारीफ़ भी करते हैं। तुम लोगों की जो रचनाएँ चकमक में छपती हैं वो असल में तुम्हारी तारीफ़ ही तो है। लेकिन तुम तो सोच रहे होगे कि ये लोग तो बस मीनमेख की बातें ही लिखते हैं, तारीफ़ कभी नहीं। असल में बात यह है कि इन्हें तारीफ़ करने में ज़रा शर्म आती है। एक बात और भी है, ऐसी तारीफ़ किस काम की कि आदमी गुब्बारे की तरह फूलता चला जाए और बिना पंखों के हवा में उड़ने लगे।

हवा में उड़ने की बात पर याद आया कि कैसे पहले के ज़माने में चिट्ठियाँ हवा में उड़कर एक जगह से दूसरी जगह पहुँच जाती थीं। लोग अपनी चिट्ठियाँ सिखाए हुए कबूतरों के पंजे में बाँध देते थे और वे उन्हें सही जगह पहुँचा देते थे। लेकिन, आजकल ऐसा नहीं होता। आजकल चिट्ठियों को सही जगह पहुँचाने के लिए उन पर डाक-टिकिट लगाना ज़रूरी होता है। कुछ दोस्त ऐसे हैं जो जाने अनजाने लिफ़ाफ़े पर डाक-टिकिट लगाए बिना ही उन्हें सही जगह पहुँचा देना चाहते हैं। कुछ तो पन्द्रह या पच्चीस पैसे का डाक-टिकिट लगाकर या रसीदी-टिकिट लगाकर ही सोच लेते हैं कि टिकिट लगाने का काम पूरा हो गया। और कुछ तो लिफ़ाफ़े पर अपने हाथ से ही डाक-टिकट बना देते हैं।

इसके कई नुकसान हैं। पहला तो यह कि हो सकता है चिट्ठियाँ जहाँ पहुँचनी चाहिए, वहाँ कभी पहुँचे ही नहीं। दूसरे, ऐसी चिट्ठियाँ अक़्सर काफ़ी देर से पहुँचती हैं। तीसरे, 'चकमक' की चिट्ठियाँ तो बिना टिकिट भी पहुँच जाती हैं हालाँकि यहाँ बैठे तुम्हारे भैया-दीदी को पोस्टमैन को एक की जगह दो रुपए देने पड़ते हैं। अगर पोस्टमैन को जुर्माना न दिया जाए तो ये चिट्ठियाँ वापस भेजने वाले के सिर पड़ेंगी। और तब उन्हें जुर्माना भरना पड़ेगा। अम्मा-बाबूजी की डाँट पड़ेगी सो अलग। अगर तुम्हारी चिट्ठियाँ यहाँ पहुँचनी बन्द हो जाएँ तो सोचो, तुम्हारी प्रिय 'चकमक' का और मेरा क्या होगा?

कुछ ऐसा ही हाल उन चिट्ठियों का भी होता है जिन पर आधा-अधूरा या ग़लत पता लिखा होता है। कई बार लिखावट ऐसी होती है कि 'लिखे ईसा और पढ़े मूसा'। पर भला हो पोस्ट आफ़िस वालों का वो ऐसी चिट्ठियाँ भी यहाँ तक पहुँचा ही जाते हैं।

तुम लोग यह न समझने लगना कि मैं तुम्हारे भैया-दीदी की तरफ़दारी कर रहा हूँ। न, बिल्कुल





नहीं। मुझे उनकी नहीं, तुम्हारी चिट्ठियों की ही ज़्यादा फ़िक्र है। जब वे तुम्हारी चिट्ठियों का जवाब काफ़ी देर से देते हैं या फिर देते ही नहीं, तब मुझे उन पर बहुत गुस्सा आता है। लेकिन वे भी क्या करें, वे हैं कुल चार और तुम सब हो कई हज़ार। कई दोस्त हर हफ़्ते चिट्ठी लिखते हैं। ऐसे में, अगर तुम्हारे भैया-दीदी जवाब देने में थोड़ी-बहुत अलाली करते हैं तो उन्हें 'बड़ा' समझकर माफ कर देना चाहिए। क्या ख़्याल है तुम्हारा?

अच्छा, तुम्हें पता है मुझे तुम्हारी रचनाओं में सबसे ज़्यादा अच्छा क्या लगता है? तुम्हारे सुन्दर-सुन्दर, प्यारे-प्यारे, रंग-बिरंगे चित्र। ख़ासकर वे चित्र तो मुझे बहुत अच्छे लगते हैं जो बच्चों के बारे में, उनकी शैतानियों, उनके कारनामे, उनके अपने खेल-तमाशों, मेले-ठेलों के बारे में हों। यानी, ऐसे चित्र जिनमें कुछ न कुछ नई बात हो। घर हो तो उसमें माँ-बाबूजी, नाना-नानी, दादा-दादी भी तो हों। आँगन हो तो उसमें तुम लोग खेल-कूद रहे हो, नदी हो तो उसमें नावें भी हों और मछलियाँ भी। पहाड़ हों तो उन पर पेड़, पेड़ हों तो उन पर चिड़ियाँ और चिड़ियाँ हो तो उनके घोंसले और घोंसलों में नन्हें-मुन्ने चूज़े भी हों। असल मज़ा तो तभी है जब तुम ऐसे चित्र बनाकर भेजो जैसे कभी किसी ने न बनाए हों। ऐसे चित्र मुझे तो मुझे, तुम्हारे भैया-दीदियों को भी इतने अच्छे लगते हैं कि सब उन्हें देखते रह जाते हैं।

अब देखो, बात-बात में बात कहाँ से कहाँ पहुँच गई! असल में बात की तो बात ही निराली है। बात बिगड़ती है तो ऐसे कि फिर बनाए नहीं बनती और जब बनने लगती है तो बनते-बनते बात का बतंगड़ बन जाती है। बात तो मेरी भी छोटी-सी ही थी लेकिन बढ़कर बतंगड़ बन गई तो मैं क्या करूँ? मैंने कहा नहीं था कि मैं बहुत बातूनी हूँ? अभी तो हज़ारों बातें हैं मेरे मन में जो मैं तुमसे करना चाहता हूँ लेकिन पता नहीं, आगे कब मौक़ा मिले। ख़ैर, दोस्ती तो अपनी हो ही गई और जब दोस्त बने हैं तो आगे मिलेंगे ज़रूर। अभी विदा साथियो!

प्रस्तुति ❑ कविता सुरेश

सृजन सृजन सृजन

चकमक के सौवें अंक के अवसर पर सृजन-93 में बच्चों से रचनाएँ, चित्र आदि आमंत्रित किए गए थे। इसमें एक हज़ार से अधिक रचनाएँ आईं। हमेशा की तरह इनमें चित्रों की संख्या अधिक थी। सबसे कम निबंध थे। चकमक की नीति के अनुरूप हमने इन सभी रचनाओं में प्रथम, द्वितीय या तृतीय जैसी कोई श्रेणी नहीं बनाई। चकमक की एक ही श्रेणी है, और उसमें चुने चित्र, कहानियाँ, कविताएँ और निबंध इसी अंक में प्रकाशित कर रहे हैं।

अच्छे चित्र

योगेश रघुवंशी, चौथी, हरदा, होशंगाबाद, म.प्र.
मनिषा हाटेकर, आठवीं, बिलासपुर, म.प्र
रोशन सरेल, छठवीं, इन्दौर, म.प्र.
यशोधन गंदगे, ग्यारह वर्ष, भोसरी, पुणे, महाराष्ट्र
रूशती, सात वर्ष, दिल्ली
सुनयना सिंह, आठवीं, लखनऊ, उ प्र
प्रदीप पंकज, दूसरी, लखनऊ, उ.प्र.
प्रियंवदा, चौथी, पटियाला, पजाब
अलिन्द, ग्यारह वर्ष, काशीपुर, नैनीताल, उ प्र
रूचि जैन, ग्यारह वर्ष, कानपुर, उ प्र
अर्पित जैन, छह वर्ष, कानपुर, उ.प्र.
आदित्य सिंह, पाँच वर्ष, नई दिल्ली
नितेश भाटिया, सात वर्ष, अजमेर, राजस्थान
प्रियंका भागवत, ग्यारह वर्ष, भोपाल, म.प्र.
पीयूष भागवत, आठ वर्ष, भोपाल, म प्र.
महिमा कपूर, तीसरी, राजाबरारी, टिमरनी, होशंगाबाद, म प्र
विपुल जैन, दूसरी, कानपुर, उ प्र
थांग सांग मोसांग, चौथी, लेडोमियाओ, चांगलाग, अरुणाचल प्रदेश
निर्मल कुमार गोयल, सोलह वर्ष, पटना, बिहार
श्रुतिप्रिया, पाँचवीं, पटियाला, पजाब
राजेश नागौरी, पाँचवीं, राजाबरारी, टिमरनी, होशंगाबाद म प्र
स्नेहा चौधरी, सात वर्ष, अजमेर, राजस्थान
पालकी कोहली, सातवीं, पिथौरागढ़
सुमित कुमार, चौथी, जरला भाटा, बिलासपुर, म.प्र.
नरेन्द्र कुमार, छठवीं, धार, म प्र.

इनके चित्र चकमक के अगले अंकों में प्रकाशित होंगे।

लोकेश कुमार कुशवाहा, करकटी, बुढार, शहडोल, म प्र.
प्रीति बाला बिल्लौरे, सातवीं, सिरसी, धार, म प्र.
मीनू मिश्रा, नवमीं, भोपाल, म प्र.
सत्यप्रकाश सिंह तंवर, पाँच वर्ष, हरदा, होशंगाबाद, म प्र.
प्रकाश राय, पिपरिया, होशंगाबाद, म प्र
रश्मि चौहान, आठवीं, कुक्षी, धार, म.प्र
जीवन चौहान, छठवीं, धार, म.प्र.
विजय कुमार राठौर, सातवीं, धार, म प्र.
नर्मदा प्रसाद, राजाबरारी, टिमरनी, होशंगाबाद, म.प्र
रंजना मालवीय, आठ वर्ष, हिरनखेडा, होशगाबाद, म प्र

अच्छी कहानियाँ

अथरज प्रकाश, दूसरी, राजाबरारी, टिमरनी, होशगाबाद, म.प्र
राजेश कुमार, पाँचवीं, राजाबरारी, टिमरनी, होशगाबाद, म प्र.
विशाल कुमार, नौ वर्ष, पादरा, बडौदा, गुजरात
अनुरूचि पांडे, नौ वर्ष, जाखनदेवी, अल्मोडा, उ.प्र
अदिती अग्रवाल, पाँचवीं, गाजियाबाद, उ.प्र.
विवेक कहार, सातवीं, सुखतवा, होशगाबाद, म.प्र
विनोद कुमार वर्मा, दसवीं, जमोनियाँ, देवास, म प्र
सौम्या सुरेश, सातवीं, भोपाल, म प्र
रवि प्रकाश मादावत, बारह वर्ष, औगणा, उदयपुर, राजस्थान
विकल्प मिश्रा, सात वर्ष, देवास, म प्र
चारू नागपाल, तीसरी, पटियाला, पजाब
विवेक कुलश्रेष्ठ, सातवीं, ग्वालियर, म प्र.
अभिमन्यु आदित्य, तीसरी, हिसार, हरियाणा
कपिल व्यास, आठवीं, पिपरिया, होशगाबाद, म प्र

अच्छी कविताएँ

गीता सोलंकी, बारहवीं, कुक्षी, धार, म प्र
स्नेहलता गुप्ता, छठवीं, सीरसी, धार, म.प्र.
अभिषेक दुबे, नवमीं, होशगाबाद, म प्र
दशरथ कुमार सुथार, बालागुडा, मंदसौर, म प्र
विवेक तिवारी, भोपाल, म.प्र.
बसन्त तिवारी, पन्द्रह वर्ष, भोपाल, म प्र
निर्मित कुमार व्यास, दसवीं, सैलाना, रतलाम, म. प्र.

अच्छे निबंध

स्वाति स्याग, छठवीं, देवास, म प्र.
रोहन अग्रवाल, चौथी, जयपुर, राजस्थान
टीना मिश्रा, चौथी, भोपाल, म.प्र.

बधाई! इन सबको सुंदर-सी कुछ पुस्तकों के अलावा दिसम्बर, 94 तक चकमक उपहार में भेजी जाएगी।

बेल : कविता, सातवीं, भोपाल, म.प्र.



मीठे सपने, कविता क़िस्से
आता है अख़बार सुबह
मेरे घर में आ जाता है
जगते ही संसार सुबह

हुई शहर में कल क्या घटना
क्या उत्सव, क्या खेल हुआ
किसका भाषण मज़ेदार था
किसमें कैसे मेल हुआ

शब्द शब्द में हमें रोज़ ही
मिलता नया विचार सुबह

चीन और अमरीका, दोनों
मेल करेंगे कैसे अब
दुनिया का सुख दुख निर्भर है।
इन दोनों पर जैसे अब

क्या बाज़ार भाव है, घर में
होता ज्यों व्यापार सुबह

देश, विदेश, गाँव या जनपद
इन छह पन्नों में है सब
बिना टिकट घूमो सब दुनिया
इन पन्नों में चाहे जब

विश्व-महल में जाएँ, आता
बनकर उसका द्वार सुबह

वर्तमान में है जो घटना
वह इतिहास बनेगी कल
अख़बारों से उठता मानव
गिरता इनसे मुँह के बल

हम क्या करें, सोचने को यह
बनता है आधार सुबह
मीठे सपने कविता, क़िस्से
आता है 'अख़बार' सुबह।

❑ श्रीप्रसाद

चित्र : विवेक



जब मैंने पहली बार चाय बनाई

एक दिन दोपहर को मेरे पापा सो रहे थे और मेरी मम्मी सिलाई कर रही थी। मेरी मम्मी को चाय पीने की इच्छा हो रही थी। तब मेरी मम्मी ने कहा, ''ये तो सो रहे हैं नहीं तो इन्हीं से आज चाय बनवाती।''

तब मैंने सोचा कि क्यों न आज मैं ही चाय बनाऊं। चुपचाप मैं किचन में गया और जब मैं चाय बना रहा था तब मेरी मम्मी किचन में आई तो मेरी चाय बन गई थी। मेरी मम्मी ने चाय छानी और जब हम लोग चाय पी रहे थे तब पता चला कि चाय में चीनी कम है। मैंने तो अपनी चाय में और चीनी डाली, लेकिन मेरे मम्मी-पापा ऐसे ही चाय पी गए।

❑ विकल्प मिश्रा, दूसरी, देवास, म.प्र.



स्वाति चौहान, सातवीं, सोनपुरी, बालाघाट, म.प्र.

नन्हा खरगोश

मैंने अपने बगीचे में एक खरगोश देखा। कुछ दिन बाद उसके दो बच्चे हो गए। एक काला था और एक सफ़ेद था। सफ़ेद बहुत सुंदर था। एक दिन मेरी सहेली बॉल से खेल रही थी तो सफ़ेद खरगोश को बॉल लग गई। मुझे बहुत गुस्सा आया। मैं सफ़ेद खरगोश को अपने घर ले आई उसको दवा लगा दी। थोड़ी देर बाद वो दौड़ने लगा तो मैं उसको फिर बगीचे में छोड़ आई। अब वो अक़्सर हमारे घर आता है।

❑ चारू नागपाल, तीसरी, पटियाला

पापा की पिटाई हुई

बात तब की है जब पापा छोटे थे। एक बार घर के सारे लोग बाहर गए हुए थे और पापा घर में ही थे। एक फ़कीर दिन में आया तो पापा ने उससे पूछा कि तुम्हें कितना आटा चाहिए? वो बोला - 'जितना दोगे उससे दस गुना मिलेगा'।

पापा ने सोचा कि जितना आटा दूँगा उससे दस गुना मिलेगा। तो पापा ने घर में जितना आटा था वो पूरा फकीर को दे दिया। बाद में जब सब लोग घर लौटे तो पापा को पिटाई पड़ी, क्योंकि उसके एक-दो दिन पहले ही दादा आटा लाए थे। पूरे महीने का आटा पापा ने फ़कीर को दे दिया था। उसके बाद पापा कभी घर पर अकेले नहीं रुके।

❑ सौम्या सुरेश, सातवीं, भोपाल, म.प्र.

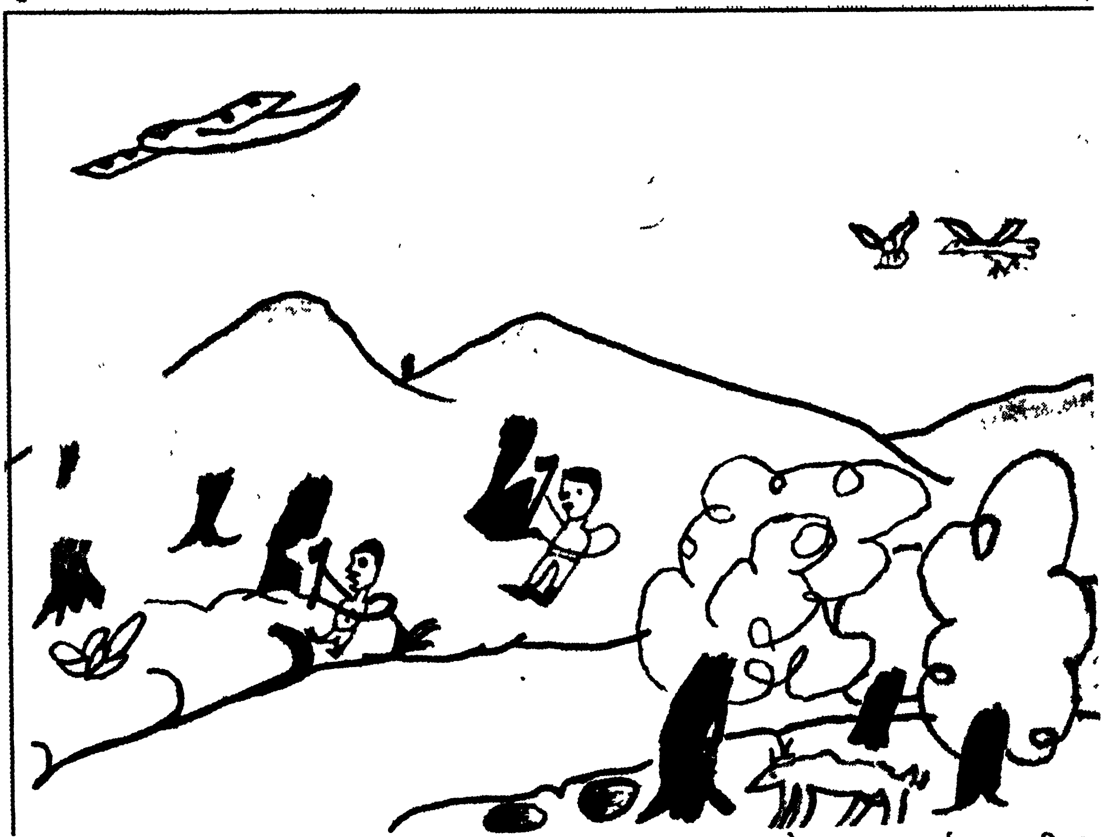


भट्टी राजीवकुमार, ग्यारहवीं, भावनगर, गुजरात

छोटे नाना जी

सुबह हुई लग गए काम में
मेरे छोटे नाना जी
मुझसे बोले—ज़रा फावड़ा
कमरे में से लाना जी।
लगे खोदने फिर वे मिट्टी
दो घण्टे तक काम किया
तब फिर पिया उन्होंने
पानी और ज़रा आराम किया।
मेरे छोटे नाना जी
सब कहते हैं दादा जी
यह भी कहते, काम आप ही
यकरते सबसे ज़्यादा जी।

❑ स्नेहलता गुप्ता, छठवीं, सीरसी, धार, म.प्र.



बृजमोहन प्रसाद, दस वर्ष, धनबाद, बिहार

लकड़ी काटने की सज़ा

हम एक बार जंगल में लकड़ी लेने गए। हमको पता था कि ई सागोन का पेड़ है। हम काटने लगे तो इतने में नाकेदार ने देख लिया और आकर पकड़ लिया। हमारी हाथ की कुल्हाड़ी छुड़ा ली और हम को बहुत डॉटा। हम घर रोते-रोते आ गए। हमारी मम्मी ने कहा, "क्यों रो रहा है?"

"मम्मी, मम्मी मेरी कुल्हाड़ी नाकेदार ने छुड़ा ली।"

मम्मी ने घबराकर मेरा हाथ छोड़ दिया, "हे भगवान, ये क्या किया तूने? अब तो कोर्ट-कचेहरी का मुँह भी देखना पड़ेगा।"

शाम को मेरे घर नाकेदार आकर मम्मी को डाँटने लगा, "आप बच्चों को लकड़ी काटने जंगल में भेजते हो।"

"नाकेदार भैया ये बच्चे अपनी मरज़ी से गए। बच्चों को मालूम नहीं था कि जंगल में लकड़ी काटने से सज़ा मिलती है। भैया चाय पियो।" मम्मी ने कहा।

नाकेदार ने मज़े से चाय पी और जाने लगे। जाते-जाते कहा, "घर आकर तुम्हारी कुल्हाड़ी ले जाना।"

❑ राजेश कुमार, पाँचवी, राजाबरारी, टिमरनी, म.प्र.

चालाक बिल्ली

हमारे घर में एक बिल्ली रहती थी। वह बहुत चालाक थी। वह हमारे घर हमेशा आया करती थी। मुझे उस पर दया आती थी इसलिए मैं उसे रोटी के टुकड़े दे दिया करता था। एक बार रात के समय मैं रसोई बन्द कर रहा था कि वह बिल्ली चुपके-से रसोई में घुस गई। मुझे पता ही नहीं चला। मैं रसोई बन्द करके सो गया। सुबह मैंने देखा कि बिल्ली ने दूध व दही दोनों खा लिए तो मैं उस पर नाराज़ हुआ। और मम्मी मुझ पर नाराज़ हुई। मम्मी ने मेरी पिटाई भी की।

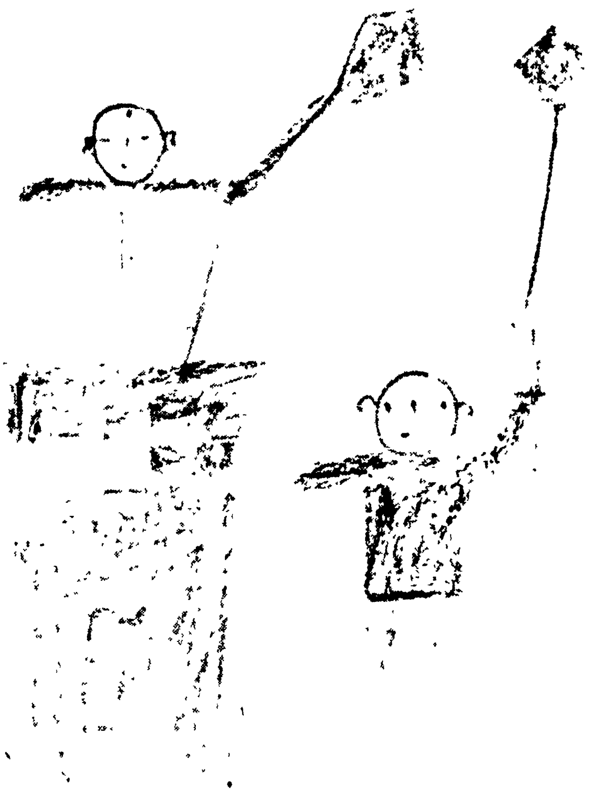
❑ रवि प्रकाश मादावत, बारह वर्ष, औगणा, उदयपुर, राजस्थान

मेरी पतंग

टन-टन-टन-टन घंटी बजी। सभी बच्चे पैंट पकड़ कर घर की ओर भागे। घर पहुँचते ही हमने बस्ते को यूँ पटका जैसे गधा अपने ऊपर लदे बोझ को पटक देता है। वैसे आप मेरी तुलना गधे से कर सकते हैं।

इसके बाद हम एक रुपए का सिक्का हाथ में लेकर भागे। थोड़ी दूर पर पत्थर से टकराकर गिर पड़े। आजू-बाजू से आवाज़ आई, 'हा-हा, हू-हू, मज़ा आ गया, ओय गिर पड़ा रे।'

हमारे क्रोध की सीमा न रही। हमने ऑख की कोर फाड़कर उन्हें देखा लेकिन हम क्रोध को टॉनिक मानकर पी गए। आगे बढ़े। पतंग खरीदकर खुशी-खुशी घर लौटे। डोर बॉधी और हो गए शुरू उड़ाने पतंग। उड़ाते तो आती नही थी। इधर खींची, उधर खींची और ऊपर वाले की कृपा, कृपा नहीं हवा से हमारी पतंग उड़ने लगी। हम पतंग उड़ाने में मग्न हो गए। हमारा छोटा भाई ऊपर आया और बोला, "भईया, भईया मेले तो भी उलाने दे ना।"



शोभा श्रीवास्तव, बारह वर्ष, ऊंचिया, दतिया, म.प्र.

हमने कहा, "अबे चुप! भग यहॉ से।"

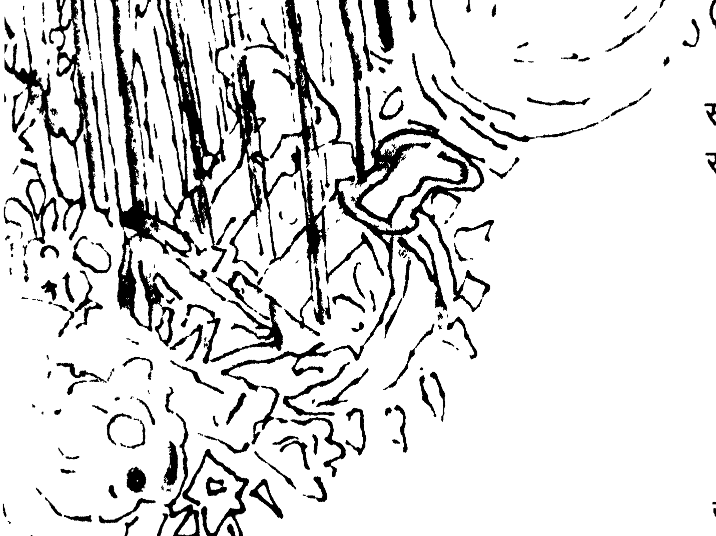
लेकिन फिर छोटे भाई के लिए हमारा दिल भी आइसक्रीम की तरह पिघल गया और हमने उसे पतंग की डोर थमा दी। हम इधर-उधर नज़ारे देखने लगे। और मुन्ने ने पतंग की डोर तोड़ दी। हम पी. टी ऊषा की तरह दौड़े। धम्म की आवाज़ हुई। और मुन्ना खिलखिलाकर हॅस दिया, "ही ही ही भैया गिल पला हू हू हू।"

नीचे गिरते ही हमारे हाथ पैर टूट गए। तभी हमारी नींद खुली और हमने अपने हाथ पैर देखे कहीं से टूटे तो नहीं हैं। हमने सोचा वाह ऊपर वाले ने क्या लात मारी है।

❑ कपिल व्यास, आठवीं, पिपरिया, म. प्र.



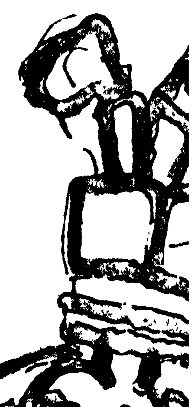
जाड़े आए



सहमे सिकुड़े, डरते से दिन
रातें बड़ी लड़ैयाँ..
जाड़े आए भैया!!

खींच खींच सूरज की चादर
रजनी पैर पसारे
काना फूसी करें उघारे
थर थर चन्दा तारे

जल्दी हारी धूप बिचारी
करती गोल बिछैया
जाड़े आए भैया!!



लदे-फदे कपड़ों में निकलें
चुन्नू-मुन्नू भाई
मम्मी के हाथों में दिनभर
नाचें ऊन सलाई







किट् किट् करते दाँत कण्ठ से
सी. . .सी. . . दैया दैया
जाड़े आए भैया!!

दुश्मन ठण्डा पानी अपना
दोस्त है धूप सुनहली
देर रात तक बातें करते
यादें उजली उजली

सबसे हमने नाता तोड़ा
नदिया, ताल, तलैया
जाड़े आए भैया!!

अमरूदों ने मीठी मीठी
खुशबू फैलाई
गोभी, गाजर, मटर,
टमाटर ने दुकान सजाई

गन्ने मीठे रस की गागर
सरसों भूल भुलैयाँ
जाड़े आए भैया!!

खाओ, खेलो, पढ़ लो, सो लो
अब तो जी भर-भर के
कोई काम करो मत भैया
घबरा के डर डर के

'ठण्ड लगेगी' - यों चिल्लाकर
हारे बेशक मैया
जाड़े आए भैया!!

❑ गिरिजा कुलश्रेष्ठ

चित्र : हरचन्दन सिंह भट्टी







❑ गुलज़ार

वो छोटा-सा बादल बहुत पाजी था–और ज़िद्दी भी! आवारगी का बहुत शौक़ था, हर वक़्त नित नई शरारत सूझती थी। कभी हवा की पीठ पर बैठ जाता और दौड़ा लेता उसे। बड़ी मुश्किल से बेचारी पर झाड़-झाड़ के उतारती उसे। बादल की माँ दूर-दूर तक बिजलियाँ चमका-चमका कर के ढूँढती उसे। बाप गरज-गरज के बुलाता। वो लौट तो आता अपने बादलों के कबीले में, लेकिन इधर-उधर भागने को मचलता रहता।

माँ ने एक बड़ी बदली के पल्लू से बाँध दिया, लेकिन मोड़-तोड़ के वो गिरह खोल लेता

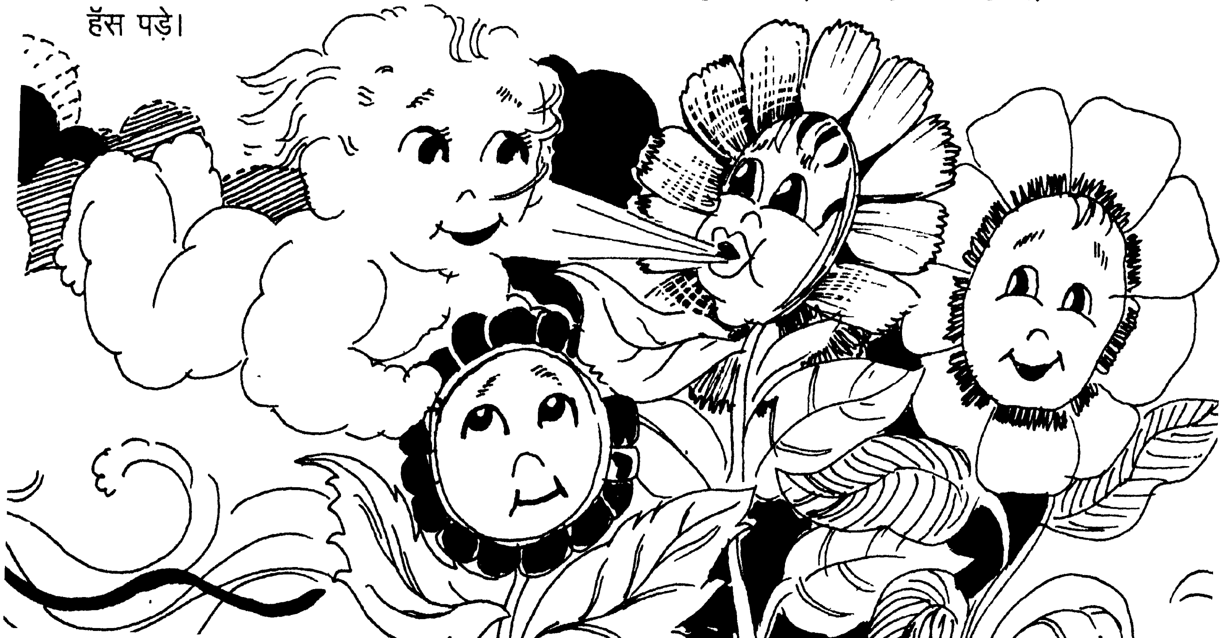




और फिर से कहीं और खिसक जाता। कबीले के साथ-साथ कभी नहीं चलता था। एक बार तो इतने ज़ोर से टकराया एक पहाड़ से कि पसीने टपक गए। एक बार एक झरने से जा उलझा- छींटे पड़े तो भाग लिया।

लेकिन एक दिन एक झील के ऊपर से गुज़रते हुए उसने अपनी शक्ल पानी में देखी तो- बस देखता ही रह गया। ज़ाविए (पहलू) बदल-बदल के देखा ख़ुद को। कभी लेटकर, कभी अँगड़ाई लेकर, कभी मुँह फुलाकर, कभी मुँह टेढ़ा-मेढ़ा बनाकर। बहुत देर बाद जब उसने आँख उठाकर देखा तो उसे आसमान पर कोई और दिखाई न दिया। अकेला, तन्हा, इतने बड़े आसमान में भटकता रहा।

गुर्राता हुआ सूरज जब बाहर निकला तो वो भागकर नीचे आ गया वादी में। लेकिन सूरज ने देख तो लिया था, उसे ढूँढने लगा। बादल बहुत देर तक भटकता रहा। आख़िर एक बाग में कुछ रंग-बिरंगे फूल देखे जो आँखें झपका रहे थे। पहले तो उसे लगा कोई बदमाशों की टोली है, जो उसे आँख मार रही थी–डरता-डरता जब उनके पास पहुँचा तो फूलों ने मुँह पर खुशबू उड़ाई और हँस पड़े।





बस इतनी-सी बात पर दोस्ती हो गई, और वो भूल ही गया कि उसका कबीला छूट गया है उससे। बहुत से फूलों ने जब ऐड़ियाँ उचकाकर उसे पकड़ने की कोशिश की तो उसने भी अपने परों से उनका मुँह भिगो दिया।

उन फूलों से ऐसी दोस्ती हुई उस पाजी बादल की कि, उसने वहीं उस बाग में बस जाने का फैसला कर लिया—फूलों से पूछा तो सबने झूमके रज़ामंदी दे दी।

सूरज भी बाज़ नहीं आया—वो भी ढूँढता रहा उसे—जंगल-जंगल, बस्ती-बस्ती ढूँढता रहा। सूरज जब भी उस बाग से गुज़रता, फूल जल्दी से उस मोटू को अपनी पत्तियों में छुपा लेते बूँद-बूँद करके—जब सूरज चला जाता तो वह रात भर फूलों के चेहरे पर ओस की तरह चमकता रहता और सुबह सूरज के आते ही छिप जाता।

उसकी माँ अब भी आती है हर साल—बरस बरस के फूलों से पूछती है। मगर वो छुपा रहता है—सामने नहीं आता—और जब माँ चली जाती है तो फूलों पर बूँद-बूँदकर चमकने लगता है पाजी! पाजी बादल!!

सभी चित्र : विवेक

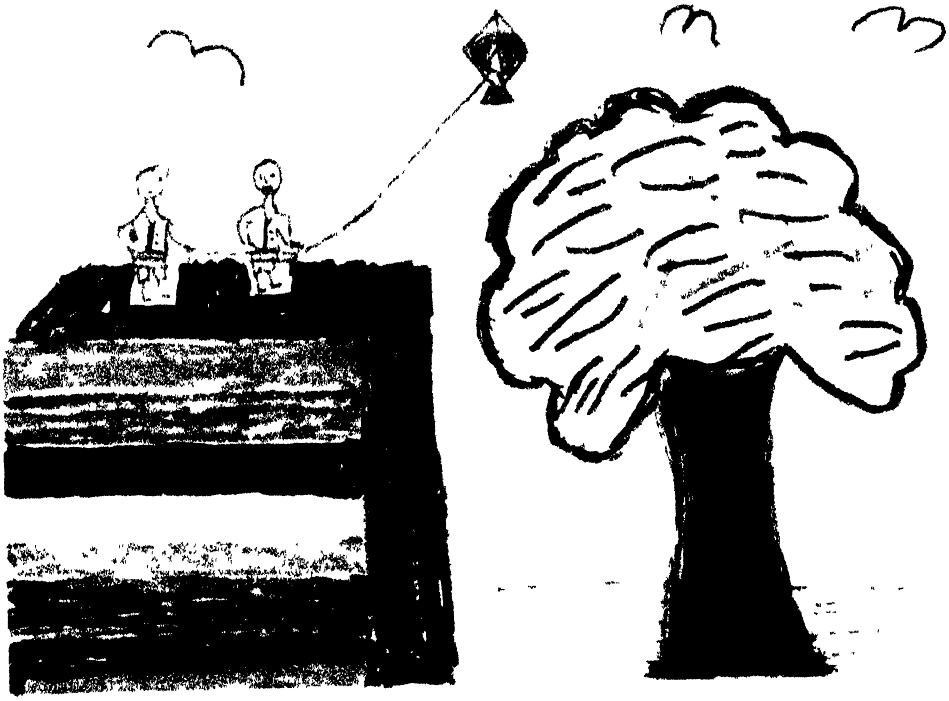




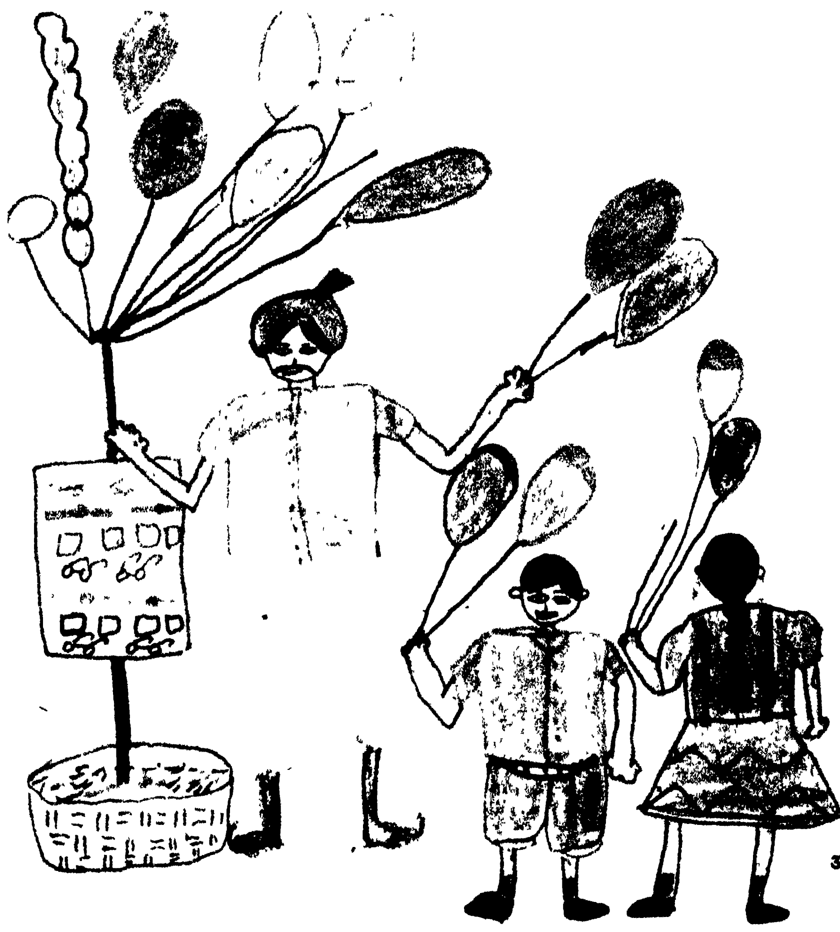
अलिन्द, ग्यारह वर्ष, काशीपुर, उ. प्र.



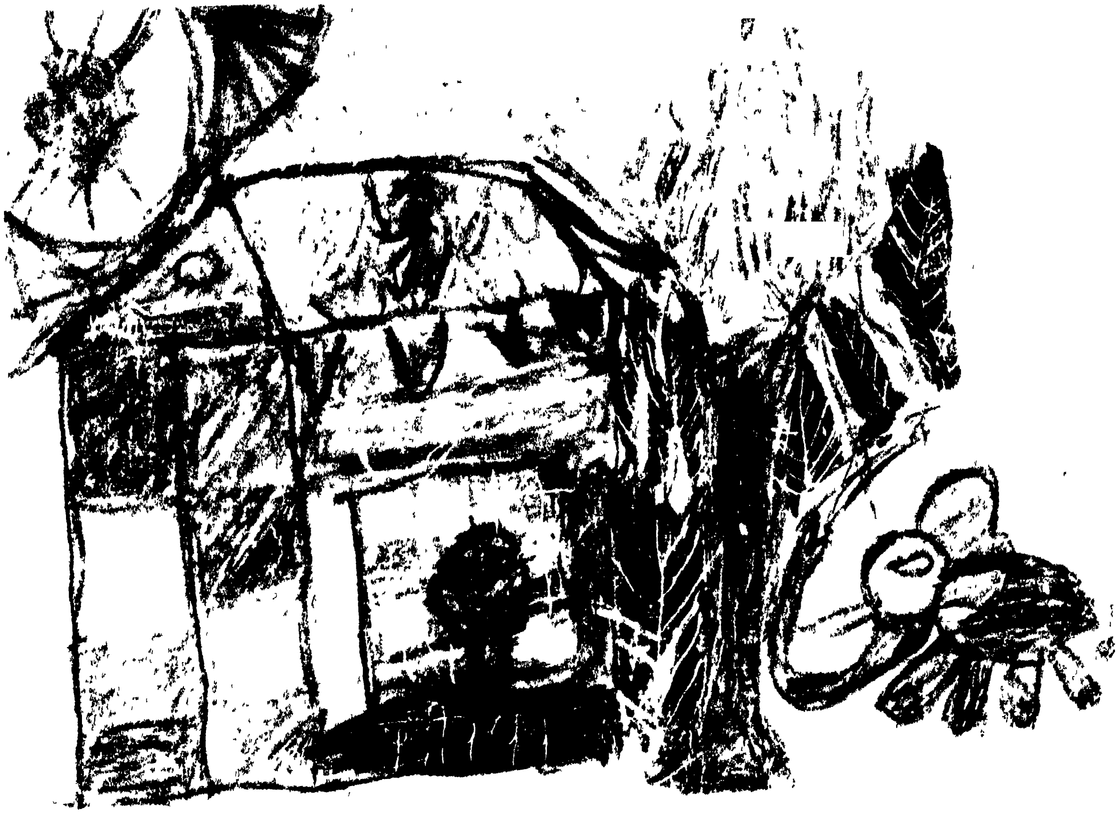
श्रुतिप्रिया, पाँचवीं, पटियाला, पंजाब



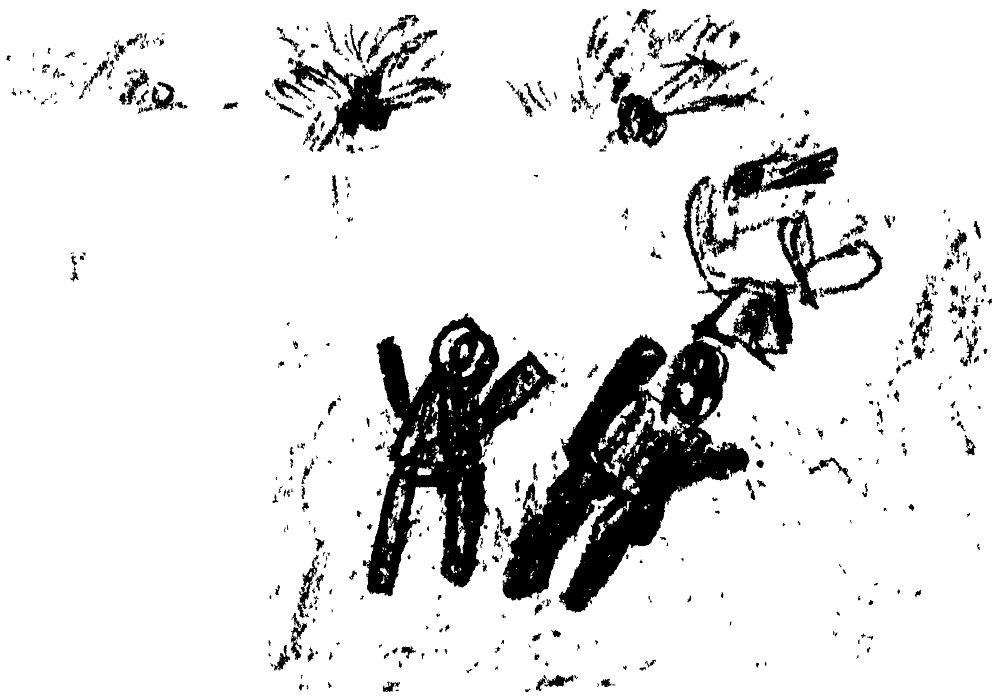
विपुल जैन, दूसरी, कानपुर, उ. प्र.



अर्पित जैन, छह वर्ष,
कानपुर, उ. प्र.



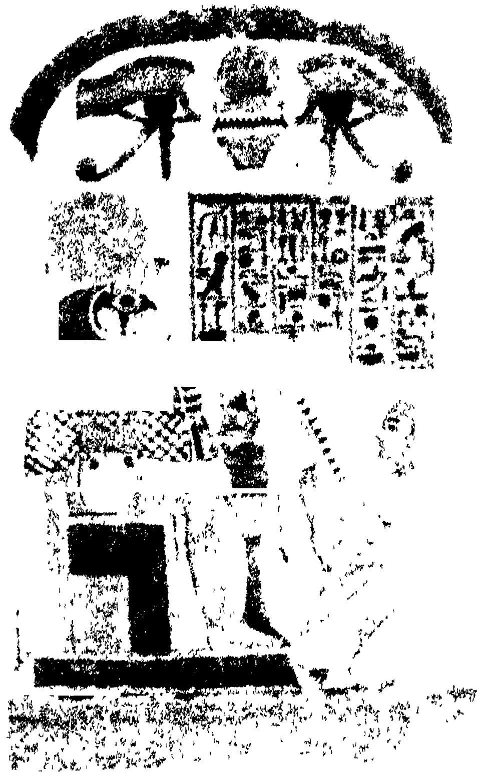
प्रदीप पंकज, दूसरी, लखनऊ, उ. प्र.



आदित्य सिंह, पाँच वर्ष, नई दिल्ली

मिस्र में पाई गई लिपिक (लिखने वाला) की एक मूर्ति जो लगभग पॉच हजार साल पुरानी है। लिपिक अपने हाथ में पैपीरस को मोडकर पकडे हुए है। बैठने की मुद्रा ऐसी है मानो लिखते हुए साधना कर रहा हो।





***हज़ारों** साल पहले मिस्र में लिखाई और संगीत को पूजा जाता था।*

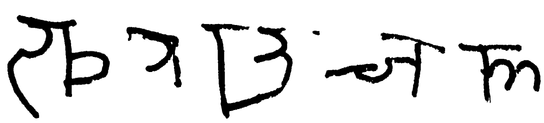


***पैपीरस** कागज पर मिस्र की लिपि में लिखी तीन हजार साल से अधिक पुरानी पुस्तक का एक पन्ना। यह पुस्तक हर मृतक के साथ दफनाई जाती थी। अंतिम संस्कार के समय पुरोहित इसी के अश पढते थे। वे मानते थे कि इन शब्दो के लिखे होने से मृतक को शक्ति मिलेगी जिससे वह मृत्यु के देवता (सींगो वाला) और मृत्युलोक के अन्य पशुओं से बच निकलेगा। दुनिया की कई अन्य सभ्यताओं में माना जाता था कि लिखाई में दिव्य शक्ति होती है।*

लिखाई की रहस्य भरी कहानी भला कितनी पुरानी?

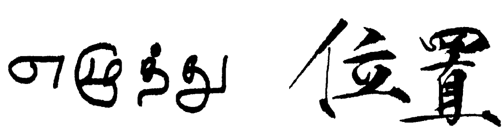
❑ अनीता रामपाल

लिखना है, भई, लिखना है! 100 वीं चकमक के लिए कुछ लिखना है। एक सुन्दर-सा रंगीन पत्र भी आया है, जिसमें जल्दी ही कोई लेख मँगवाया है। पर लिखूँ तो क्या लिखूँ? कौन सी कहानी, कैसा लेख? अरे हाँ, क्यों न लिखाई की ही कहानी लिख डालूँ। कहानी मज़ेदार है, कहीं रहस्यमयी और कहीं रोमांचक भी है। पहेलियों का अंबार लिए है – चाहो तो सालों साल माथा-पच्ची में उलझे रहो। और चित्रों का भण्डार संजोए है – बस, आँखों पर सवार दुनिया भर की सैर कर लो। यह कहानी पुरानी ही नहीं, बहुत बहुत बहुत, पुरानी है। तो चलो संग, समय की दुनिया में कुछ उल्टी चाल चलें, हॉ 'रिवर्स गीयर' में कुछ पीछे की ओर बढ़ें।



***छोटू** की लिखाई की शुरूआत (उम्र साढे चार साल, भोपाल)।*

याद करो जब पहले-पहल तुमने लिखना सीखा था। कितना मुश्किल था! क ख ग - उफ़! क्या मेहनत करनी पड़ती थी। और फिर क्या का क्या बन जाता था। हाथ में चॉक या पेंसिल पकड़ना ही अपने में कठिन काम था। फिर उससे अक्षरों की विचित्र आकृतियाँ बनाना और भी पेचीदा लगता। उस कसरत का कुछ वैसा ही एहसास आज करके देखो। अपने उल्टे हाथ से इनमें से अनजाने अक्षरों को लिखने की कोशिश करो :



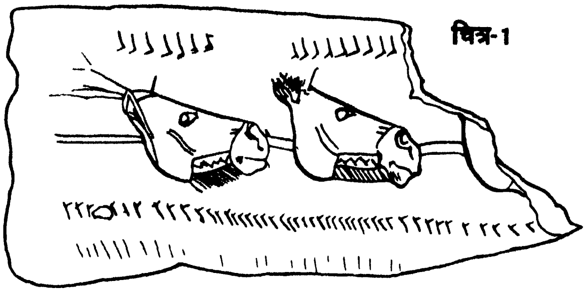
है न दूभर काम? आया कुछ याद उस बीते हुए ज़माने का। तंग आ आकर अपने रोने गाने का। फिर लौटकर बार-बार वही क ख ग बनाने का। आख़िरकार सीख ही लिया हमने लिखना। और लाखों हैं जो आज बड़ी उम्र में भी लिखना सीख रहे हैं। बचपन में साक्षर बनने का सही मौका नहीं मिला तो आज वे रात-रात भर इन्हीं अक्षरों से जूझ रहे हैं। बस, सीखने वालों का धीरज बना रहे और हम लगातार अभ्यास कर पाएँ तो फिर क्या है – सब मुश्किलें धुल जाती हैं। लिखाई फिर इतनी आसान लगने लगती है मानो जैसे...... नहीं, नहीं, बाएँ हाथ का खेल तो शायद वह आज भी नहीं है!

सवाल यह उठता है कि सबसे पहले मनुष्य को लिखना कैसे आया होगा? जब सीखने-सिखाने का कोई सिलसिला ही नहीं था। फिर लिखाई का ध्यान ही उसको कैसे आया होगा? अचानक ही उसे अक्षर बनाने की तो सूझी नहीं होगी। फिर किस तरह उसने लिखाई की शुरूआत की होगी?

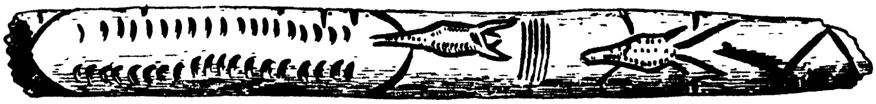
शुरूआत की भी शुरूआत - हड्डी पर यह कैसे निशान?

लिखाई की शुरूआत की भी शुरूआत तक पहुँचने के लिए तो हमें बहुत ही पीछे जाना होगा। अपनी गाडी को हज़ारों साल पहले के ज़माने में पहुँचाना होगा। उस पुराने समय में जब सबसे पहले आदिमानव ने हाथ में पत्थर का औज़ार उठाया और उससे बना दिया एक हड्डी पर कोई संकेत। केवल यूँ ही कुछ लाईनें खींचने की बात हम नहीं कर रहे, बल्कि सोच समझकर संकेत बनाने की। जिस संकेत का कुछ मतलब हो। और चक्कर तो इसी में है! चूँकि खुदाई के दौरान तो बहुत-से ऐसे पत्थर और हड्डियाँ मिलते रहे हैं जिन पर कुछ-कुछ लाईनें बनी रहती थीं। **चित्र 1,2,3** देखो। पर बहुत समय तक यही माना जाता रहा कि आदिमानव ने यूँ ही

चित्र-1 : बीस-पच्चीस हज़ार साल पुरानी हड्डियाँ जिन पर आदि मानव ने कुछ संकेत बनाए थे।

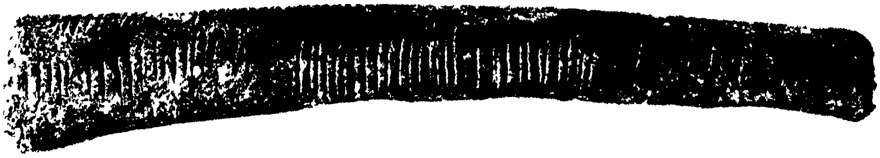


चित्र-1



चित्र-2

चित्र-2 और 3 : हड्डियों पर बने संकेत।



चित्र-3



चित्र-3

बैठे-बैठे खुरचकर कुछ 'डिज़ाइन' या आकृति बना दी थी। और लगता भी तो ऐसा ही था।

अब भला सोचो, पच्चीस हज़ार साल पहले किसी आदिमानव ने हड्डी पर कुछ 'खुरच' दिया तो आज हम कैसे जानें कि उसने वैसा क्यों किया था? क्या उसके पीछे कोई मतलब था या नहीं? वह महज़ बैठे-बैठे लाईनें खींच रहा था या फिर सोच-समझकर कोई ख़ास संकेत बना रहा था? अब उसके मन में तो झाँका नहीं जा सकता। न ही कोई और सुराग दिखाई पड़ता है। देखा कैसे-कैसे चक्कर हैं लिखाई की कहानी में! पर यही तो मज़ा है– हमेशा, हर मोड़ पर गहरा रहस्य। जासूस की तरह अनजाने संकेतों में से छिपा हुआ मतलब खोज निकालना होता है।

हड्डी पर खुरचे इन संकेतों का पुराना रहस्य हाल ही में (यानी लगभग बीस साल पहले) मालूम हुआ है। मारशैक नाम के एक व्यक्ति ने इसकी खोज की। उसके मन में यह विचार आया कि चूँकि हड्डी पर निशान क्रम से बने लगते हैं इसलिए ज़रूर यह किसी नियमित घटना-क्रम को ही दर्शाते हैं। सोचो तब आदिमानव के सामने कौन-कौन सी ऐसी घटनाएँ थीं जो क्रम से बार-बार घटती रहतीं? मारशैक ने जाँच के दौरान पाया कि वाक़ई हड्डियों पर खुरचे संकेत चाँद के घटते-बढ़ते क्रम को दिखा रहे थे। यानि अमावस से पूनम और फिर अमावस तक का जो चक्र है उसी को देखकर आदिमानव ने मानो उसका एक "लिखित" दस्तावेज़-सा बना लिया था उसी हड्डी पर। हर दिन का एक संकेत लगाया था, और कई महीनों तक यह काम किया था।

यह जानकर मारशैक तो दंग रह गया था। उसे स्वयं विश्वास नहीं आ रहा था कि यह सच है। और उसे डर था कि दुनिया के अन्य विशेषज्ञ उसकी बात को स्वीकार नहीं करेंगे। उसे अब ख़ूब मेहनत करनी थी। कई प्रमाण पेश करने थे इस बात को साबित करने के लिए। मारशैक ने अलग-अलग जगहों पर पाई गई ऐसी हड्डियों की सालों तक बारीक़ी से जाँच की। सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) से उन्हें परखा। उसने यह भी पाया कि कई जगह तो आदिमानव ने विभिन्न तरह के संकेतों का इस्तेमाल भी किया था। उदाहरण के लिए, **चित्र-2** में दिखाई हड्डी पर तो केवल छोटी लाईनें बनी हैं, छोटी-छोटी लाईनों के कई समूह। पर **चित्र-3** वाली हड्डी पर

विभिन्न तरह के कई संकेत पाए गए। और आश्चर्य की बात है कि हड्डी का यह 'कैलन्डर' पूरे साल भर तक बनाया गया था। हड्डी हल्की और छोटी होती है और इसे अपने साथ-साथ लिए चलना भी सम्भव था। सोचो तो, पच्चीस हज़ार साल पहले उस आदिमानव ने कितनी लगन के साथ उस हड्डी पर साल भर तक एक-एक दिन का संकेत बनाया होगा। उस साल में चाँद कब पूरा दिखा, कब आधा, और कब-कब चाँद दिखा ही नहीं – इस सब जानकारी को उसने खुरचकर छोड़ दिया था। भला क्या उपयोग था इस जानकारी का? हम आज तो केवल अनुमान ही लगा सकते हैं। शायद उससे वह जान सकता था कि कितने, 'पूरे. चाँदों' बाद जब ठण्ड पड़ेगी तो बर्फ़ से बचने का उपाय उसे ढूँढना है। या शिकार के लिए निकले तो आने वाली अमावस तक अपनी गुफ़ा में लौट आना है। क्या मालूम? हो भी सकता है कि किसी गर्भवती महिला ने हड्डी पर समय का हिसाब रखकर यह जानना चाहा हो कि कितने पूरे चॉदों बाद उसे जचकी के लिए तैयार रहना पड़ेगा। (वैसे, तब गिनती तो वे जानते नहीं थे– पर क्या गिनती का बीज भी इसी हड्डी में नहीं छिपा है?)

हड्डियों के 'कैलन्डर' की ख़बर सुनते ही दुनिया भर में ख़ूब हलचल मच गई थी। पुरानी चीज़ों का अध्ययन करने वाले लोगों ने सोचा भी न था कि लिखाई की शुरूआत का बीज इतने पहले खुरची हुई किसी हड्डी में छिपा होगा। तब तक तो सभी यही मानते थे कि आदिमानव को केवल चित्रकारी आती थी, संकेत बनाने नहीं।

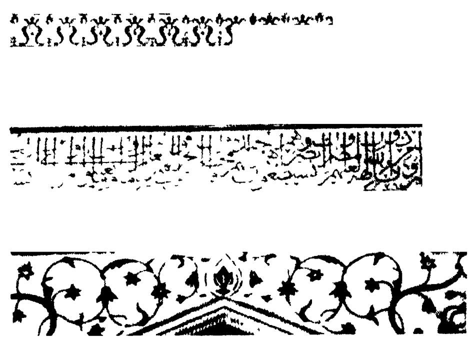
चित्रकारी है या कोई चित्र-संकेत?

कुछ लकीरें चित्रकारी के लिए बनी हैं या उनसे कोई ख़ास संकेत बना है यही जानना ज़रूरी होता है। और इसी में चूकने का डर भी होता है। यह केवल आदिमानव द्वारा बनाई गई लकीरों की समस्या नहीं। मज़े की बात तो यह है कि आज की किसी लिखाई से हम परिचित न हों तो हम भी उसे चित्रकारी मान बैठें। जैसे, **चित्र-4** की सुन्दर आकृति वास्तव में चीनी भाषा की एक कविता है। **चित्र-5** में दी गई



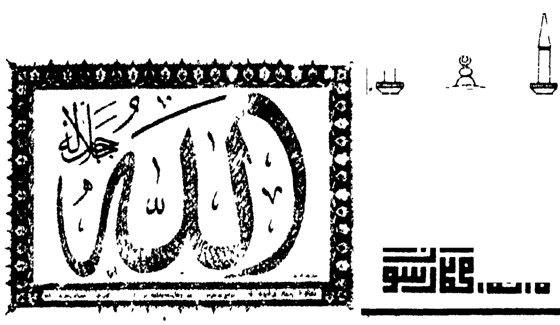
चित्र-4

चित्र-5



आकृति ताजमहल के संगमरमर पर उकेरी हुई नक़्क़ाशी है। अब तुम तो पहचान लोगे की कहॉ चित्रकारी है और कहाँ क़ुरान के वाक्य अंकित हैं। परन्तु जो फ़ारसी या उर्दू लिपि को नहीं पहचानते वे अक़सर धोखा खा जाते हैं। वैसे, किसी लिपि को सुन्दर चित्रकारी की तरह लिखना भी अपने में एक कला है जिसे ख़ुशख़त (सुलेख) कहते हैं। उर्दू,

चित्र-6



अरबी और फ़ारसी में इस कला को बहुत विकसित किया गया था। चूँकि इस्लाम में मूर्तियाँ तो बनाते नहीं, इसलिए अल्लाह के नाम को सुन्दर से सुन्दर ढंग से लिखना ही इबादत (पूजा) माना जाता था-**चित्र-6**।

हज़ारों साल पहले आदिमानव ने चट्टानों पर तरह-तरह की चित्रकारी की थी। क्या तुमने कभी उनके चित्र देखे हैं? मध्यप्रदेश में भीमबैठका, रायसेन, काथोटिया, आदमगढ़ आदि अनेक जगहों पर ऐसे चित्र पाए गए हैं। देखो चकमक का मई, 1991 का अंक। पत्थर पर इतने बारीक चित्र बनाने और उनमें रंग भरने का (रंग भी ऐसा जो हज़ारों सालों तक धुला-मिटा नहीं) कौशल आदिमानव में था।

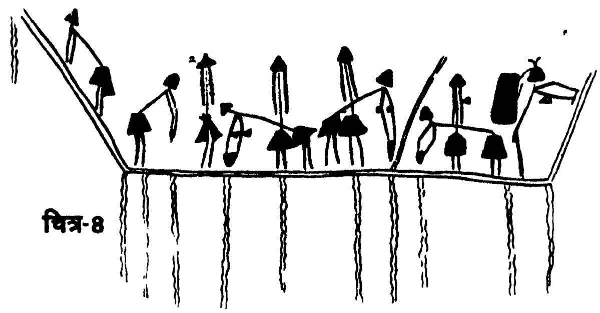
परन्तु बोलने की भाषा उसने बनाई न थी। कुछ ही आवाज़ों से उसका काम चल जाता। चित्र बनाते-बनाते उसने कुछ सरल संकेतों का इस्तेमाल करना शुरू किया। यानी मानो कोई जानवर बनाना है तो पूरी आकृति न बनाकर कोई छोटा संकेत ही बना दिया। जैसे जंगली बकरा न बनाकर बस **चित्र-7**



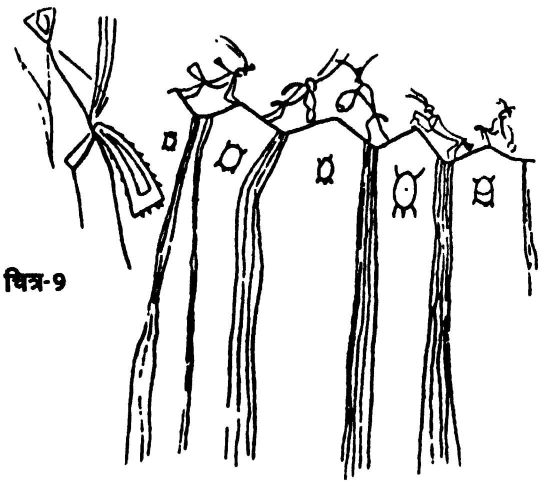
चित्र-7

जैसा संकेत बना दिया जिसमें उसके सींगों से ही वह पहचाना जा सके। अच्छा, चलो एक पहेली बूझो। **चित्र-8** और **9** को देखो। दोनों चित्रों में क्या तुम पहचान सकते हो कि नीचे की ओर जाती हुई लाइनें किस चीज़ का संकेत हैं? ध्यान से देखो। आसपास किस तरह के जानवर बने हैं? इनसे कुछ मदद मिली? मज़े की बात तो यह है कि ये चित्र (**चित्र-8,9**) तो भोपाल के पास (काथोटिया और सतकुंडा में) मिले हैं जबकि **चित्र-10** मिला है दूर स्पेन देश की एक (अल्टामीरा) गुफा में। यानी हज़ारों साल पहले दुनिया की दो अलग जगहों के आदिमानव ने कुछ एक ही जैसे संकेत बनाने का सोचा!

हाँ, अब तक तो तुमने बूझ ही लिया होगा कि



चित्र-8



चित्र-9



चित्र-10

यह लाइनों का संकेत 'पानी' दिखाने के लिए था। इस चित्र में मछली, केकड़ा, मगरमच्छ आदि जैसे जानवरों को देखकर ही यह अनुमान लगाया गया। आदिमानव के इन चित्रों में जिस तरह के संकेतों की शुरूआत हमें दिखती है, कुछ उसी तरह के संकेतों से हज़ारों साल बाद पहली लिपि बनी थी।

पहली लिपि का जन्म मेसोपोटामिया में

लगभग छः हज़ार साल पहले (लगभग 4000 ईसा पूर्व) की बात है । दुनिया के सबसे पहले शहर बनने लगे थे। शहरों के साथ व्यापार भी ज़ोर पकड़ रहा था। व्यापार का हिसाब रखने के लिए लिखने की ज़रूरत पड़ती थी। केवल याद रखने से लेन-देन का कारोबार चल नहीं पा रहा था। राजा भी अपना शासन बनाए रखने के लिए



चित्र-11 : इस मिट्टी की टिकिया पर मेसोपोटामिया के एक साहूकार ने हिसाब लिखकर रखा कि उसने अपने कितने गधे किस-किसको कर्ज़ में दिए। यह टिकिया 2500 ईसा पूर्व में लिखी गई थी।

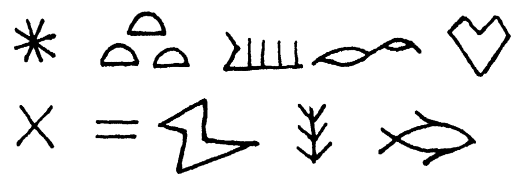
लिखित आदेश जारी करने लगे थे। शासन की तिजोरी भरने के लिए किसानों से कर भी वसूल किया करते थे। उसका भी पूरा लेखा-जोखा रखा जाता।

मेसोपोटामिया (जहाँ आज का इराक देश है) की पुरानी लिपि को ही सबसे पहली लिपि माना गया है। मेसोपोटामिया के साथ मिस्र, चीन और भारत की पुरानी सभ्यताओं ने भी अलग-अलग लिपियाँ बनाई थीं। इन पहली लिपियों में आज जैसे अक्षरों की वर्णमाला नहीं थी, चित्र-संकेतों से ही शब्द बनाए जाते थे। मेसोपोटामिया की लिपि का नाम पड़ गया है 'क्यूनिफॉर्म' जिसे हिन्दी में हम 'कीलाक्षरी' भी कहते थे। चूँकि इसके संकेत कीलों की तरह दिखते हैं **(चित्र-11)**। दरअसल लकडी की नुकीली क़लम से गीली मिट्टी की पट्टी पर इसे लिखा जाता था।

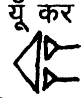
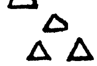
शुरू-शुरू के चित्र संकेत आसान थे। जैसे, बताओ इन संकेतों का क्या अर्थ होगा? बूझ लिया? पहला संकेत था 'गाय' का और दूसरा 'बैल' का। देखा, बैल के इस संकेत और आदिमानव द्वारा बनाए गए जंगली बकरे के संकेत **(चित्र-7)** में



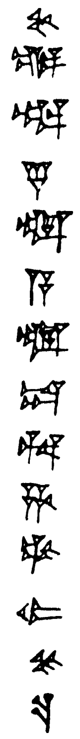
कितनी समानता है। जबकि दोनों संकेतों के बनने के बीच दस-पन्द्रह हज़ार सालों का अंतर है! चित्रों से चित्रलिपि बनने में कई हज़ार साल लग गए थे।



अब ऊपर दिए मेसोपोटामिया के चित्र संकेतों को पहचानने की कोशिश करो। इन दस संकेतों में से तुम कितने बूझ पाए?

नुकीली क़लम से घुमावदार संकेतों को मिट्टी पर लिखने में दिक़्क़त आती थी। इसलिए इन्हें बदलकर कँटीला बना दिया गया। साथ ही संकेतों को टेढ़ा करके लिखने लगे ताकि लिपि को बाएँ से दाएँ लिख सकें। जैसे गाय के संकेत  को बदलकर कँटीले संकेतों में पहले यूँ कर दिया  और फिर उसे टेढ़ा करके यूँ  लिखने लगे। इसी तरह पहाड के  इन गोलाकार संकेतों को पहले कँटीला बनाया  और फिर घुमाकर यूँ  लिखने लगे। लेकिन इन बदलावों से ये तथा अन्य सभी संकेत इतने जटिल हो गए कि फिर उन्हें समझना मुश्किल हो गया **(चित्र-12)**। आम लोग तो इन्हें पढ़ ही नहीं पाते थे।

लिपि जटिल होने के साथ-साथ काफ़ी विकसित तो हुई। पर इसे जानने वाले लोग बहुत ही कम थे। और लिखना उनका धंधा बन गया था जिसके दम पर उन्होंने अपनी धाक जमा ली थी। उन लिपिकों (लिखना जानने वालों) की अलग एक उच्च जाति-सी बन गई थी। अक़सर राजाओं को लिखना नहीं आता था। राजा अपने लिपिकों को ख़ुश रखते थे ताकि वे उनकी ख़ूब बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा लिखते रहें। और उन्हीं से राजाओं का कारोबार भी



चित्र-12

चलता रहता। राजा कहीं भी दान करते तो तुरन्त शिलालेखों पर पूरा ब्यौरा लिखवा देते कि कब कितना दान किया था। देवी–देवताओं की प्रशंसा के लेख भी लिखवाए जाते थे। साहूकार अपने सभी लेन-देन का हिसाब लिखवाया करते। यही नहीं, क़ानून, राजनीति, धर्म, खगोल की पूरी पुस्तकें ही मिट्टी की पट्टियों पर लिख दी जाती थीं। जैसे एक मिट्टी की पट्टी पर यह जानकारी मिलती है कि शुक्र ग्रह उन्हें कब-कब दिखा था। पहले की चित्र लिपियाँ इतनी मुश्किल हो गई थीं कि इनको सीखना बड़ी लगन का काम था। कुछ ही बच्चों को चुनकर लिखना सिखाया जाता था और उनकी ख़ूब पिटाई भी होती थी। उन्हें छः सौ से अधिक चित्र संकेत याद करने पड़ते थे। सोचो, आज भी चीन देश की लिपि के कई हज़ार अलग-अलग संकेतों को वहाँ के बच्चे कैसे सीखते होंगे। हमें तो क, ख, ग जैसे अपने कुछ ही अक्षरों को लिखना सीखना इतना मुश्किल लगता है। है न? और उस पुराने ज़माने में मेसोपोटामिया के बच्चों को गीली मिट्टी या पत्थर पर लिखना पड़ता था। उनके पास काग़ज़ नहीं था।

मिस्र की लिपि 'देवताओं की लिखाई'

लेकिन मिस्र में लिखना सीखने वाले बच्चों के पास मिट्टी और पत्थर के अलावा एक और बढ़िया-सी हल्की-फुलकी, लचीली-सी चीज़ थी – काग़ज़ जैसी 'पैपीरस'। (हालाँकि काग़ज़ तो सबसे पहले चीन में बना था।)

मिस्र की नील नदी के किनारों पर पैपीरस नाम का पौधा उगता था। उसी के तने से काग़ज़ जैसी पट्टियाँ बनाई जातीं जिन पर स्याही-कलम से लिखा जाता (चकमक के सितंबर 92 अंक में लेख देखो 'मिट्टी से काग़ज़ तक')। पैपीरस पर लिखाई भी आसानी और तेज़ी से हो पाती थी। कहाँ पत्थर पर ठोक-ठोक कर या मिट्टी पर खुरचकर संकेत बनाना, और कहाँ काग़ज़ पर स्याही–क़लम से तेज़ घसीटा मार पाना। और काग़ज़ को तो मोड़कर आराम से हाथ में पकड़ भी सकते थे। (पृष्ठ 20 पर रंगीन चित्र देखो।)

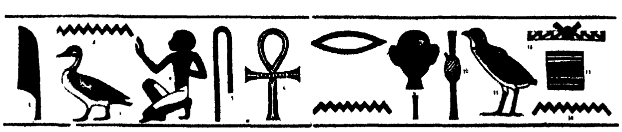
मिस्र की लिपि में कँटीले कील जैसे संकेत नहीं थे – इसके संकेतों में तो सुन्दर चित्रकारी थी। इस लिपि को बहुत कलात्मक ढंग से लिखा जाता था। इसका नाम पड़ा 'हाईरोग्लिफिक्स' या 'देवताओं की लिखाई'। नीचे इस लिपि के संकेत देखो। क्रमशः चलना, खाना, ढूँढना, रोना। इनको तो तुम पहचान



गए होगे। आगे देखो क्रमशः बैल, मधुमक्खी (या शहद), आदमी (या बेटा), औरत (या विधवा), खुशी इन शब्दों के संकेत पहचानने भी बहुत मुश्किल नहीं।

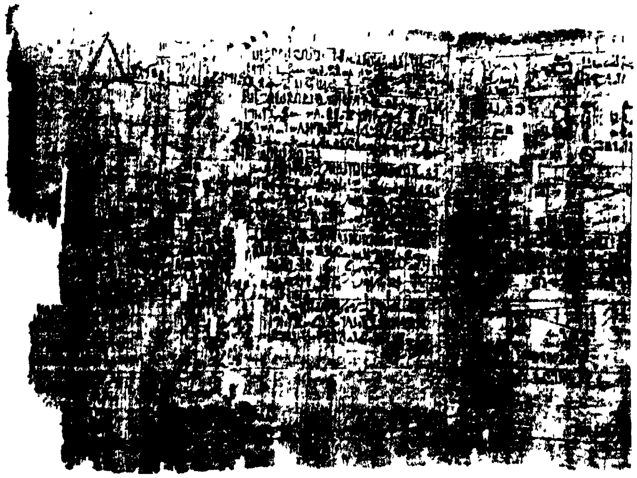


परन्तु दिक़्क़त तो तब आती है जब कोई पूरा वाक्य लिखा हो। **चित्र-13** में जो वाक्य दिया है उसका मतलब है, "वह मेरा बेटा है जिसने मेरे नाम को इस शिलालेख पर जीवित रखा है।" अब यहाँ तो शायद केवल "बेटा' का संकेत पहचान में आता है, बाकी तो कुछ समझ नहीं आता।



चित्र-13

यही नहीं, हाइरोग्लिफ़िक्स में और भी चक्कर थे। इसे किस दिशा से पढ़ना शुरू करें यह तक निश्चित नहीं था। चूँकि कभी तो इस लिपि को दाएँ से बाएँ लिखा जाता, कभी ऊपर से नीचे, और कभी बाएँ से दाएँ। फिर भला कैसे कोई तय करे कि लिखाई की दिशा क्या है? हाँ, इसका एक सुराग था। यह देख लो कि संकेतों में बने पशु - पक्षी (सभी जीवित प्राणी) किस ओर मुँह किए हैं – उसी जगह
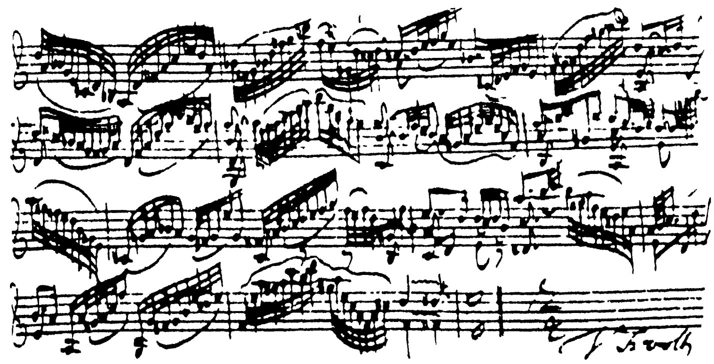


त्रिकोण और पिरामिडों का गणित लिखा हुआ है इस चार हज़ार साल (1900 ई.पूर्व) पुराने पैपीरस पर।



एक पुराना जापानी चित्र जिसमें लिखना सिखाया जा रहा है। उस ज़माने में लडकी को लिखना आना तो बहुत ही बडी बात मानी जाती थी।



चमड़े पर लिखे गए गणित के जोड हिसाब (1700 ई.पूर्व)

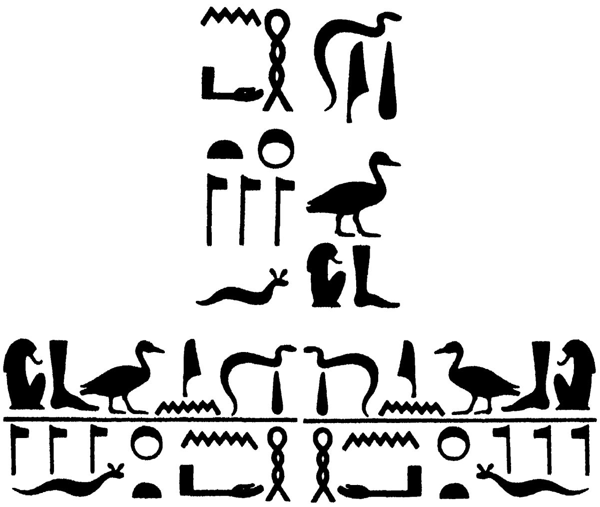


संगीत को लिखने के लिए विशेष संकेतों का इस्तेमाल होता है। विश्व के प्रसिद्ध संगीतकार जोहान सेबैसटियन बाख द्वारा लिखे गए पाश्चात्य संगीत का एक अंश।

इसी ज़माने में लिखा गया एक पत्र! जी हां, अक्षरों का साथ न होने पर चित्रों का सहारा लिया उत्तरी अमरीका के ओजीबबा जनजाति के एक आदिवासी ने। भैंस और दो छोटे जानवरों की खालों के बदले (संकेत x) सौदा किया है बंदूक और तीस ऊदबिलावों की खाल का।



से पढ़ना शुरू करें। नीचे चित्र में दिखाया है कि एक ही बात को कैसे अलग-अलग दिशाओं में लिखा जाता था।



पुरानी लिपियों का रहस्य कैसे खुला

तुम सोच रहे होगे कि अगर वाक़ई यह पुरानी लिपियाँ इतनी टेढ़ी हैं तो फिर इनके बारे में आज हमें मालूम कैसे है? हाँ, आजकल तो कोई ऐसे लिखता नहीं। और ये लिपियाँ तो सोलह सौ साल पहले (यानी 400 ईसा के बाद) से लुप्त ही हो गई थीं। फिर आज के लोगों ने इन संकेतों का मतलब कैसे जाना होगा?

लगभग पन्द्रह शताब्दियों तक यह लिपियाँ रहस्य में ही डूबी रहीं। कई लोगों को खुदाई के दौरान अनेक पत्थर, मिट्टी की पट्टियाँ और पुस्तकें मिलती तो रहीं पर उन पर लिखा क्या है यह समझ में नहीं आता था। सालों तक ये पहेलियाँ लोगों को सताती रहीं। आख़िर लिपियों के रहस्य का ताला खोला फ्राँस के रहने वाले शैंपोलियों ने। एक ही पत्थर पर बने संकेतों को समझने में उसने चौदह साल लगाए। उसे मालूम चला था कि रोज़ेटा में पाया गया वह पत्थर कुछ ख़ास है – चूँकि उस पर (टॉलेमी राजा का) एक ही संदेश तीन लिपियों में लिखा हुआ था। एक लिपि थी यूनानी जिसको तो वह जानता था। अन्य दो लिपियाँ प्राचीन मिस्र की थीं जो कोई नहीं जानता था। उसे सबसे पहला सुराग मिला जब उसने यह पहचान लिया कि मिस्र की लिपि में जब भी कोई नाम लिखा जाता है तो उस के चारों ओर एक 'फ्रेम' या घेरा बनाया जाता है **(चित्र-14)**। बस, इसी से शैंपोलियों ने दो नाम पहचान लिए। रोम का राजा 'टॉलेमी' और उसकी पत्नी 'क्लीयोपैट्रा' का (जो 200 ईसा पूर्व में मिस्र पर राज कर रहे थे)। उन्हीं दो नामों से फिर उसने एक तीसरा नाम पहचाना। एलकज़ेन्ट्रस (सिकंदर) का। बस, फिर क्या था। वह तो नामों के ही पीछे पड़ गया। चूँकि 'फ्रेम' या घेरा बना देखकर यह पहचानना आसान था कि कौन-कौन से संकेत नाम हैं। कई जगहों से उसने कुल अस्सी नाम इकट्ठे किए और



चित्र-14 : एक शिलालेख में मिस्र की लिपि में कुछ लिखा है। जिस चित्र के चारों ओर 'घेरा' बना है वह वास्तव में एक नाम है।



टॉलेमी



क्लीयोपैट्रा



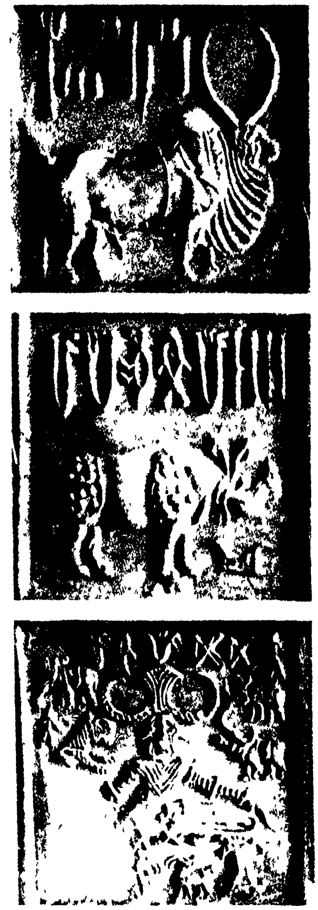
एलकजन्ट्रस

उन्हीं को बूझते-बूझते उसे काफ़ी संकेतों का मतलब समझ आने लगा। सालों की मेहतन बाद वह रोज़ेटा के उस पत्थर से मिस्र लिपि का रहस्य खोलने में सफल हुआ। ऐसे ही लोगों की लगन और मेहनत का नतीजा है कि आज दुनिया को मिस्र की पुरानी सभ्यता के बारे में इतना कुछ मालूम है।

पुरानी लिपियों की पहेलियाँ बुझाने का बुखार केवल बड़ों को ही नहीं बच्चों को भी उत्साहित करता रहा है। ऐसा ही एक बालक था माईकल वेन्ट्रिस। चौदह साल का ही था जब उसने लंदन में एक रोचक भाषण सुना। यूनान के क्रीट द्वीप की पुरानी लिपि के बारे में सुनकर उसने कसम खाई कि इस लिपि की पहेली वही सुलझाएगा। और वैसा ही कर दिखाया। सोलह साल बाद सन् 1952 में उसने दुनिया को रैखिक-ब नाम की लिपि का रहस्य बता दिया।

अपनी सिंधु लिपि का रहस्य कौन खोलेगा?

अब तुम बताओ, क्या यह सुनकर तुममें भी आया कुछ जोश ऐसा ही कमाल कर दिखाने का? चूँकि कई पुरानी लिपियों का रहस्य तो आज भी बना हुआ है। हमारी ही पुरानी हड़प्पा सभ्यता की लिपि को लो। **चित्र-15** में दी मुहरें देखो। इन पर बने सिन्धु लिपि के संकेत आज तक नहीं पहचाने गए हैं। कितने ही लिपिविदों को इसने चक्कर में डाल रखा है। इसे सिन्धु लिपि भी कहा जाता है चूँकि सिन्धु नदी के किनारे बसे कई पुराने शहरों की यह लिपि थी। इस सभ्यता का तो पिछले साठ-सत्तर सालों में ही पता चला है। हड़प्पा सभ्यता के शहर भारत के सबसे पुराने शहर थे। लगभग पाँच-छह हजार साल पहले (3500 ई.पू.) ये शहर बसे थे। खुदाई के दौरान कई हज़ार मिट्टी की मोहरें और बर्तन मिले हैं जिन पर कुछ लिखा हुआ दिखता है। पर इन पर क्या लिखा है कोई ठीक से समझ नहीं पाया। इस लिपि की पहेली कोई बूझ पाए तो सच मज़ा आ जाए। उन लोगों की चीज़ें देख - देखकर इतना अचम्भा होता है। इतने सवाल भी मन में उठते हैं। आख़िर कैसे इतने बढ़िया शहर बना पाए थे वे लोग? तौल के बाँट, ताँबे के बर्तन, पानी के शानदार हौज़ और नालियाँ आदि। यह सब बनाने का विज्ञान और तकनीक वे कैसे जान पाए थे? उनकी लिपि समझने पर हम उनके बारे में शायद और अधिक जान पाएँ। और अपने ढेरों सवालों के कुछ उत्तर ढूँढ पाएँ। बोलो, तुम में से कोई हैं जो यह बीड़ा उठाएँ कि सिन्धु लिपि की पहेली सुलझाकर ही दम लेंगे?



चित्र-15

वर्णमाला के अक्षरों ने दिखाया कमाल

सबसे पुरानी लिपियाँ, चित्र संकेतों का इस्तेमाल करती थीं। तभी तो मेसोपोटामिया, मिस्र, चीन और भारत की इन पहली लिपियों में सैकड़ों संकेत होते थे – हर अलग शब्द का मानो अलग ही संकेत था। परन्तु तीन हज़ार साल पहले (1000 ई.पू) लिखाई की कहानी ने एक नया मोड़ लिया। संकेतों की जगह आ गए अक्षर, जिन्होंने लिखाई में अपना कमाल दिखा दिया। बस, बीस-तीस अक्षरों से सभी कुछ लिखा जा सकता था। और यह कैसे? चूँकि अब हर शब्द को उसके स्वर से लिखा जाने लगा था।

देखो, अब मानो कितने ही अलग-अलग शब्द हों, जैसे, चकमक, मामा, चमक, कच्चा, कम, चमचम, काकी, चाचा.... इन सभी शब्दों को लिखने के लिए हमें केवल तीन ही अक्षरों च, क, म, की ज़रूरत पड़ती है। है न? परन्तु चित्र संकेत बनाने की कोशिश करो! अलग-अलग संकेत बनाते बनाते

थक जाओगे। तो हुई न बचत अब अक्षरों से लिखने में।

वर्णमाला के अक्षरों की लिपि को तीन हज़ार साल पहले फीनिशियन लोगों ने बनाया था। वे लोग जहाज़ में बैठकर दूर देशों तक जाया करते थे व्यापार करने। उनके साथ उनकी लिपि भी दुनिया में कई जगह पहुँची। बस फिर क्या था। कई जगह अक्षरों वाली लिपियाँ बनने लगीं। हीब्रू, यूनानी, अरबी के साथ-साथ हमारे यहाँ भी अक्षरों वाली ब्राह्मी लिपि बनी। 300 ई.पू. से भारत में जगह- जगह पर शिलालेख और स्तम्भ मिलते हैं जिन पर ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ है। ब्राह्मी लिपि से ही हमारी अधिकतर सभी लिपियाँ बनी हैं। परन्तु ब्राह्मी को आज तुम पढ़ना चाहो तो पहचान नहीं पाओगे। काफ़ी अलग दिखती है यह हमारी हिन्दी की देवनागरी लिपि से ।



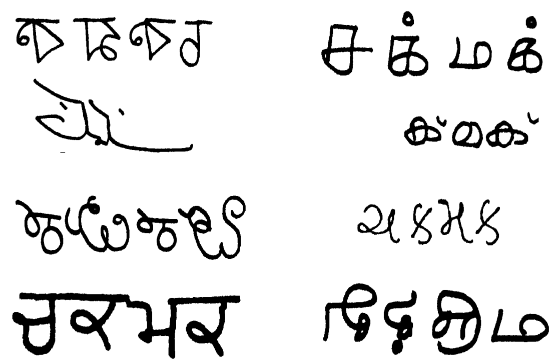
क ख छ ज झ

अच्छा, अब यहीं ख़त्म करते हैं लिखाई की इस लम्बी कहानी को। सच, कितना लम्बा सफ़र तय किया है तुमने! पच्चीस हज़ार साल पहले आदिमानव के उस हड्डी के 'कैलन्डर' से लेकर आज जैसी अक्षरों वाली लिपि तक। कहा जाता है कि तीन हज़ार साल पहले जब वर्णमाला के अक्षर दुनिया में आए तो लिखाई में एक क्रांति आ गई थी। चूँकि लिखना इतना आसान हो गया था। सैकड़ों, हज़ारों, चित्र संकेतों से जूझना नहीं पड़ता। बस, पच्चीस-तीस अक्षरों को सीखो और लिख लो सभी कुछ। पर क्या तुम्हें लगता है कि वाक़ई ही दुनिया भर में लिखाई की क्रांति आई है?

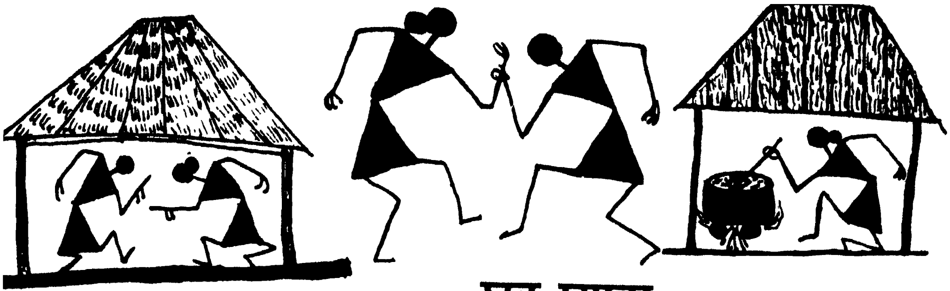
मुझे तो लगता है कि तीन हज़ार साल पहले क्रांति शायद आते-आते रुक गई। और उसके बाद से लिखाई की कहानी कुछ सुस्त हो गई थी। बहुत देर से अब उसमें कोई फड़कती हुई घटना नहीं घटी है। हाँ, लिखाई ने क्रांतिकारी जामा ज़रूर पहना और छपाई का रूप धारण किया – पर वह तो एक अलग ही कहानी है।

लिखाई की कहानी में असल क्रांति तो तब आएगी, जब दुनिया के सभी लोग लिखना जान जाएंगे। हमारे देश में करोड़ों लोगों का अक्षरों से कभी परिचय नहीं हुआ। लाखों बच्चे कहानियाँ केवल सुन सकते हैं पर नई – नई कहानियाँ स्वयं पढ़ नहीं पाते। लिखाई की क्रांति तभी होगी जब यह सभी बच्चे अक्षरों को अपना सकेंगे। तुम उनकी क्या मदद कर सकते हो? अपने अक्षर उनके साथ भी बाँट सकते हो? हमारे देश में शायद यह कहानी अब फिर नई अँगड़ाई ले रही है। पुकार रही है कि तुम सब आओ और मदद करो, मुझमें एक नई जान लाओ। बहुत सुस्ता ली मैं, अब मैं भी तेज़ी से भागना चाहती हूँ।

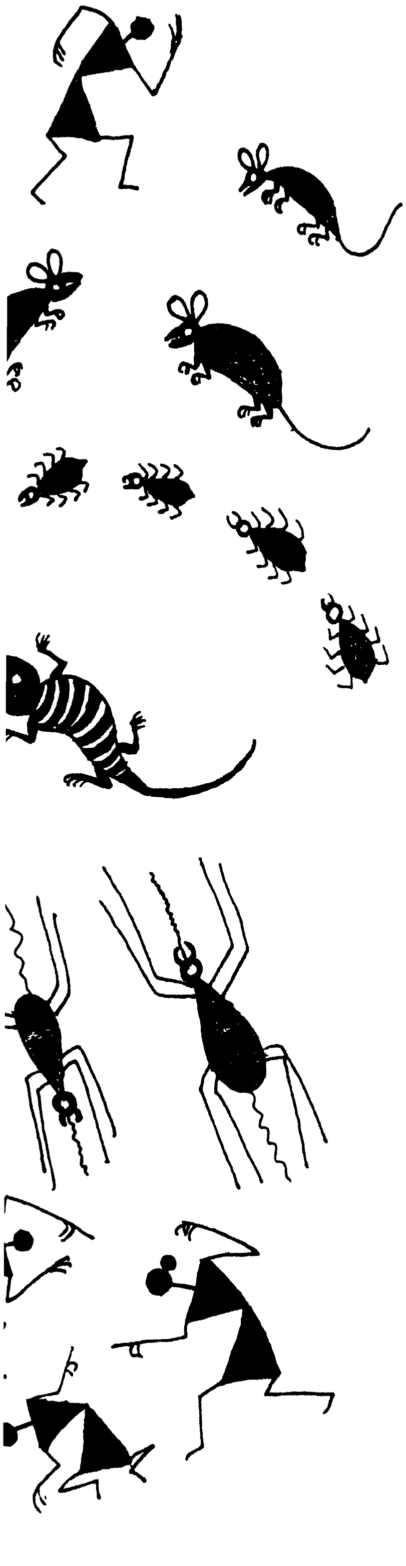
जाते-जाते तुम्हारे लिए एक आख़िरी पहेली। तुम सब जो यह कहानी पढ़ रहे हो – बोलो तुम कितने अक्षरों के दोस्त हो? भारत की कितनी लिपियाँ तुम पहचान पाते हो? नहीं, नहीं, पुरानी रहस्यमयी लिपियाँ नहीं। हम तो आज की 'चालू' (प्रचलित) भाषाओं की लिपियों की बात कर रहे हैं। अच्छा, चलो पहचानो – नीचे दी गई कौन-कौन सी लिपि तुम पहचान पाए? और इन सबमें जो एक शब्द लिखा हुआ है, वह भला क्या है?! ❑❑



इस लेख में आए चित्र इन किताबों से साभार लिए गए हैं : राइटिंग, अल्फ़ाबेट्स एंड स्क्रिप्ट्स (न्यू हॉरायज़न्स); दि आर्ट एंड आर्कीटेक्चर ऑफ दि वर्ल्ड साइंस; एन्शियेंट इजिप्ट, एन्शियेंट चायना (टाइम लाइफ़); दि रूट्स ऑफ़ सिविलाइज़ेशन (एलेक्ज़ेन्डर मारशैक); दि ऑरिजिन ऑफ़ राइटिंग (रॉय हैरिस); लर्निंग अबाउट राइटिंग (पैम ज़रनिउस्का); भारतीय लिपियों की कहानी (गुणाकर मुले); दि केम्ब्रिज एन्सायक्लोपीडिया ऑफ़ लैंग्वेज (डेविड क्रिस्टल); लाइंस ऑन स्टोन (एरविन न्यूमेयर)।



घर प्यारा





सदा यही तो कहती हो माँ
घर यह सिर्फ़ हमारा अपना।
लेकिन माँ कैसे मैं मानूँ
घर तो यह कितनों का अपना।

देखो तो कैसे ये चूहे
खेल रहे हैं पकड़म-पकड़ी।
कैसे मच्छर टहल रहे हैं
कैसे मस्त पड़ी है मकड़ी!

और छिपकली को तो देखो
चलती है जो गश्त लगाती!
अरे कतारें बाँधे-बाँधे
कहाँ चीटियाँ दौड़ी जातीं।

और उधर आँगन में देखो
पंछी कैसे झपट रहे हैं।
बिलकुल दीदी और मुझ जैसे
किसी बात पर झगड़ रहे हैं।

और यह देखो काक्रोच भी
दिन रात क्या यहीं ना रहते
क्यों रहते ये इस घर में जो
इसे ना अपना घर समझते।

इसीलिए तो कहता हूँ माँ
घर ना समझो सिर्फ़ हमारा
सदा-सदा से जो भी रहता
सबका ही है घर यह प्यारा।

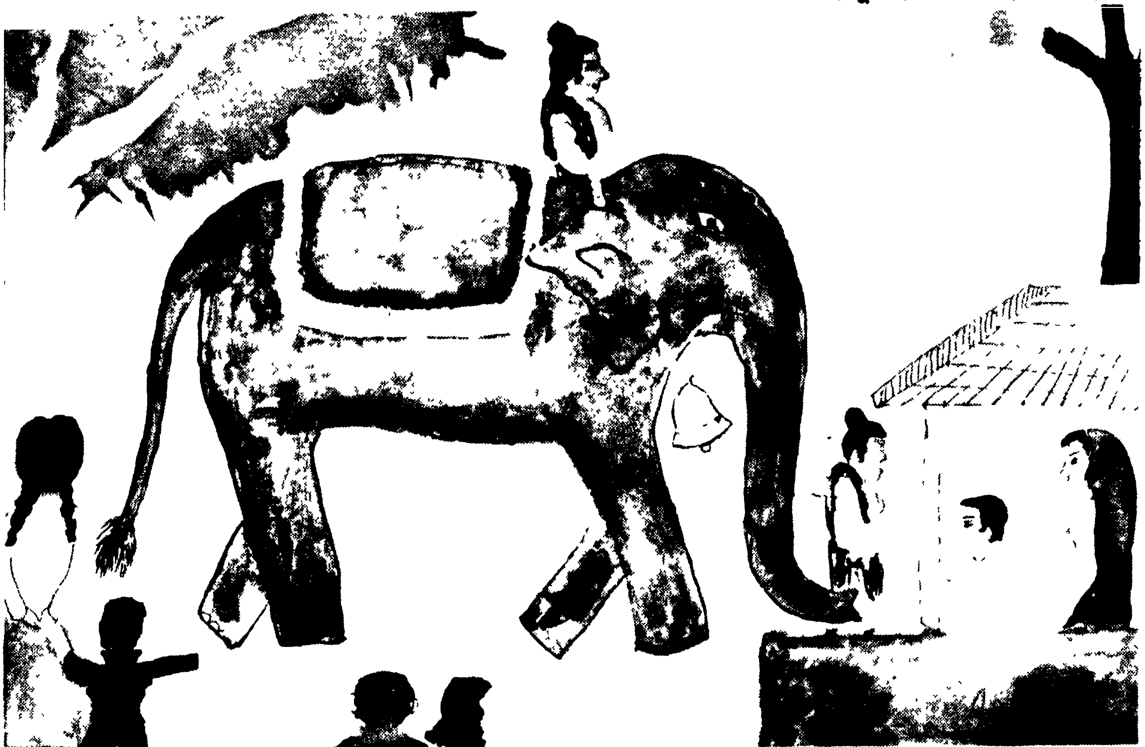
❑ दिविक रमेश

चित्र : मीनाक्षी

हाथी का डर

एक बार हमारे गाँव में एक हाथी आया। मैंने पहले कभी हाथी नहीं देखा था। इसलिए उसे देखकर मैं बहुत डर गया। मेरा एक दोस्त मौन्टी भी डर गया। हाथीवाला सबको उस पर बैठाने लगा। जब मुझे हाथी पर बैठाने को कहा तो मैंने मना कर दिया। पर बार-बार कहने पर मैं बैठ गया। फिर हाथी चलने लगा तो मुझे बहुत मज़ा आया। और तब से मैंने हाथी से डरना छोड़ दिया।

❑ अथरज प्रकाश, दूसरी, राजाबरारी, टिमरनी, म.प्र.



संदीप शर्मा, तेरह वर्ष, धार, म.प्र.

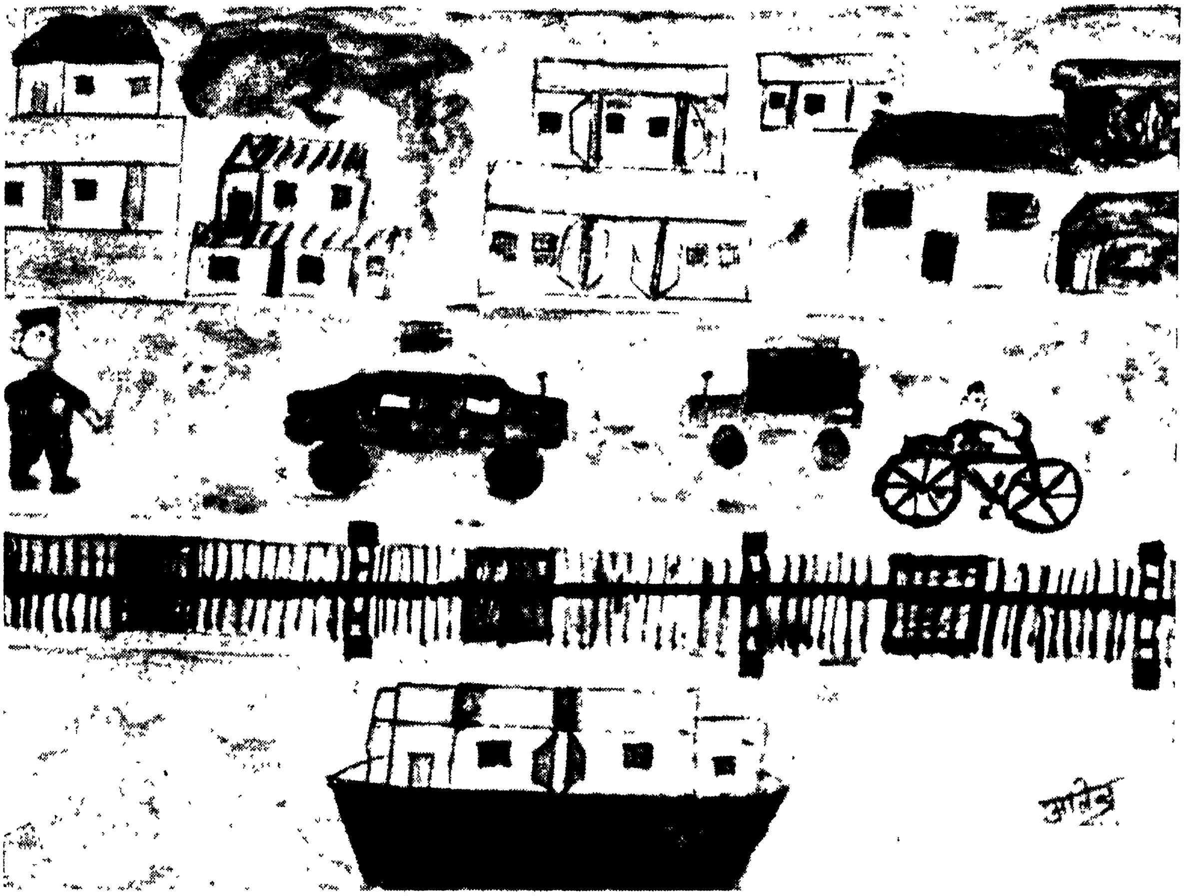
मौसी के घर ढाई दिन

मेरी मौसी हमारे ही शहर में रहती हैं। उन्होंने हमें अपने घर बुलाया। गर्मी ज़्यादा होने के कारण काफ़ी दिनों तक हम उनके घर नहीं जा पाए। मौसी के घर एक कुतिया भी है जिसका नाम कार्तिकी है। एक दिन मुझे कार्तिकी के पंजे की छाप वाला एक पत्र मिला जिसमें मुझे आने के लिए लिखा हुआ था। फिर तो मैंने वहाँ जाने के लिए माँ को मना ही लिया।

अगले ही दिन माँ और मैं मौसी के घर पहुँच गए। वहाँ मेरे एक भैया हैं जो आठवीं कक्षा में पढ़ते हैं। और एक दीदी हैं जो बारहवीं कक्षा में पढ़ती हैं। वहाँ पहुँचने पर पता चला, कि चिट्ठी वाली शरारत भैया की थी। ख़ैर अब तो सबकी नाराज़गी दूर हो चुकी थी। यहाँ तक कि कार्तिकी भी जो हर बार मुझ पर भौंकती थी इस बार मेरी दोस्त बन गई। उसकी चेन खोलने पर उसने एक बार मेरे पाँव सूंघे और बस फिर तो हम साथ-साथ ही रहे।

मैंने भैया के साथ कई खेल भी खेले जैसे व्यापार और शतरंज। मैंने छोटे-छोटे कामों में मौसी की सहायता भी की जैसे मेज़ पर खाना लगाना, झाड़-पोंछ करना। मैं वहाँ ढाई दिन रहा और इन ढाई दिनों में ख़ूब मज़े किए।

❑ अभिमन्यु आदित्य सिंह, तीसरी, हिसार, हरियाणा



अलिन्द, आठवीं, काशीपुर, नैनीताल, उ.प्र.

पर्यावरण

मैं यह सोचता हूँ कि पहले पर्यावरण कितना सुन्दर होता था। हर तरफ पेड़ पौधे फूलों की प्यारी खुशबू, हरदम ठंडी और शुद्ध हवा चलती थी। नदियों में शीतल और ठंडा पानी बहता था। चिड़ियाँ मीठे गाने गाती थीं। न कोई शोर-शराबा। हर तरफ साफ-सुथरा। न ज़्यादा लोग बीमार होते थे और न ही ज़्यादा संख्या थी।

पर आज एकदम उल्टा है। न तो ठंडी हवा, न ही नदियों में ठंडा पानी, न ही चिड़ियों के मीठे बोल। हर तरफ शोर-शराबा। इधर कोई भाषण दे रहा है, तो उधर कोई तेज़ रेडियो सुन रहा है। लोग सड़क पर कचरा फैंक देते हैं। जिस फुर्ती से पेड़ कट रहे हैं उन पर तो कोई ध्यान ही नहीं देता। लोग कहते हैं ज़माना बदल गया है। ज़माना खुद नहीं बदला उसको बदला गया है। लोगों ने धरती को गेंद समझ रखा है। अभी भी हम बचा सकते हैं धरती को। बचाओ! बचाओ! धरती को।



गरिमा तिवारी, आठवीं, धार, म.प्र.

नाव

सुन्दर सी एक नाव बनाई
चुन्नु ने फिर उसे चलाई
छोड़ा उसको एक धार में
बढ़ी नाव फिर तेज़ धार में
जल्दी-जल्दी बढ़ती नाव
रुक-रुक चल पड़ती नाव
तेज़ी से फिर नाव बढ़ी
आगे थी एक नदी बड़ी
पकड़ा उसने तेज़ बहाव
पीछे छोड़े घर और गाँव
चुन्नु जी मन में खीझे
दौड़े नाव के पीछे-पीछे
नाव न उनके हाथ लगी
और तेज़ रफ़्तार बढ़ी
चुन्नु ने सोचा आखिर
जाकर पहुँचेगी सागर।

❑ अभिषेक कुमार दुबे, नौवीं, होशंगाबाद, म.प्र.

नदी

नदी तुम कहाँ जाती हो?
मेरी नाव को लेकर के तुम
कहाँ पर खो जाती हो?
जब मैं तुम पर लकड़ी डालता
उसको तुम तैराती हो,
पर मैं जब पत्थर को डालता
उसको क्यों डुबाती हो?
नदी तुम मेरे एक प्रश्न का
उत्तर तो सुझाओ,
तुम में खेलती मछलियाँ सारी
मुझको भी तो खिलाओ।

❑ विवेक तिवारी, आठवीं, भोपाल, म.प्र.

पर्यावरण

अम्बर नीला सागर नीला
सूरज देता धूप।
सागर से तो बादल बनते
बरसात होती खूब।
चाँद देता चाँदनी
तारे करते टिमटिम।
कलियों से तो फूल बने
भँवरे करते भिनभिन।

❑ दशरथ कुमार सुथार, बालागुड़ा, मंदसौर, म.प्र.



विश्वेन सोनेजी, सात वर्ष, साकवा, गुजरात

पाठ्यपुस्तक बनाम चकमक



अब से कोई दो साल पहले वाराणसी के राजघाट बेसेन्ट स्कूल में चकमक को लेकर एक अनूठा प्रयोग किया गया। स्कूल के कुछ शिक्षक चकमक के पुराने पाठक हैं और सवालीराम जी के दोस्त भी। इन लोगों ने कई नामी-गिरामी शिक्षाशास्त्रियों के पर्चों में पढ़ा और भाषणों में सुन रखा था कि बच्चों को अगर किसी विषय पर पाठ्य-पुस्तकों के अलावा, कविता, कहानियाँ, पत्रिकाओं के लेख आदि पढ़ने को दिए जाएँ तो उन्हें समझने में आसानी होती है। और साथ ही समझने की प्रक्रिया भी मज़ेदार बन जाती है। पर अब वे ख़ुद करके देखना चाहते थे कि ऐसा वाक़ई होता है या नहीं?

इस काम के लिए उन्होंने अतिरिक्त सामग्री के रूप में चकमक को चुना। और अपने इस प्रयोग में राजघाट स्कूल के बारह-तेरह वर्ष की उम्र वाले 26 बच्चों को शामिल किया। पहले इन बच्चों को शरीर के अंगों पर आधारित पाठ्य-पुस्तक का कोई पाठ पढ़ाया जाता। फिर उन्हें पढ़ने के लिए चकमक के वे अंक दिए जाते जिनमें (आँख, नाक, कान, त्वचा, खोपड़ी, खून आदि) उन अंगों के बारे में लेख थे। हरेक बच्चे को अपनी-अपनी चकमक की प्रति का सम्बंधित लेख मन-ही-मन पढ़ना था। वे चाहते या ज़रूरत महसूस करते तो अपने शिक्षकों से चर्चा कर सकते थे। और विस्तार से पढ़ने के लिए चकमक अपने साथ भी ले जा सकते थे।

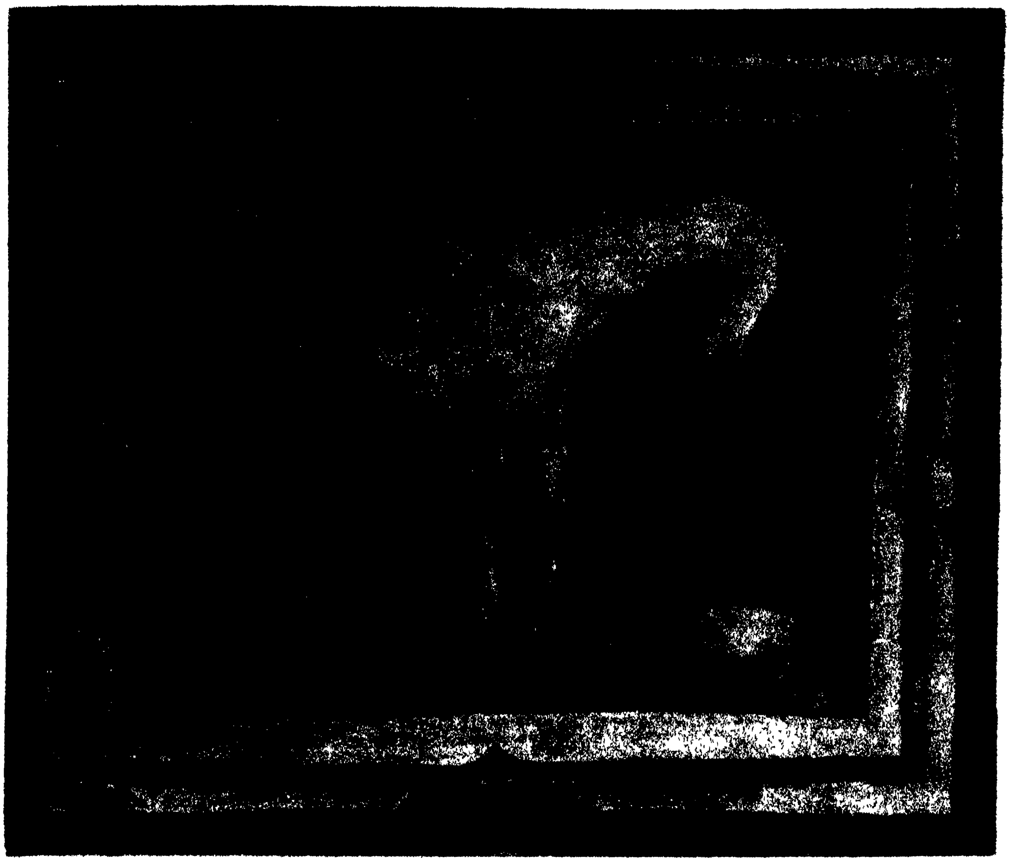
बाद में इन बच्चों से सवाल-जवाब करके पता लगाया गया कि कितनों को चकमक पढ़ना शरीर विज्ञान की समझ बढ़ाने में मददगार लगा और क्यों लगा? कितनों को नहीं और क्यों? आदि। यह बात सामने आई कि 26 में से 16 बच्चों को लगा कि चकमक बहुत मददगार थी। 8 को लगा कि थोड़ी मददगार रही और 2 को यह लगा कि कोई मदद नहीं मिली। चकमक अच्छी लगने के कुछ स्पष्ट कारण जो बच्चों ने बताए, वे हैं –

1. जानकारी जब कहानी के रूप में होती है तो समझना आसान हो जाता है।
2. इसमें पाठ्यपुस्तक से कहीं अधिक जानकारी दी है, लेकिन रोचक तरीक़े से।
3. प्रस्तुतिकरण का तरीक़ा बहुत अच्छा है। जैसे शरीर का हर अंग अपनी कहानी ख़ुद बताता है, तो पढ़ने में मज़ा आता है।
4. लेख इसलिए भी अच्छे लगे क्योंकि वे बच्चों की भाषा में ही हैं।
5. रोचक और हलके-फुलके तरीक़े की सामग्री पढ़ने में अच्छी लगती है और जानकारी भी मिलती है। जबकि पाठ्य-पुस्तकें बोरियत भरी लगती हैं।

यह भी पता चला कि 40% बच्चों को प्रस्तुतिकरण ने प्रभावित किया। 22% को ये लेख मज़ेदार और आनन्ददायी लगे। जबकि 15% बच्चों को चित्रों से बहुत मदद मिली। 15% अतिरिक्त जानकारी पाकर खुश थे। हाँ, इन लेखों की फैंटेसी ने भी 8% बच्चों को प्रभावित किया।

एक महत्वपूर्ण बात यह भी सामने आई कि स्कूल के अँग्रेज़ी माध्यम की पढ़ाई के बनिस्बत हिन्दी में होने के कारण ये लेख ख़ास पसन्द आए। यह शायद अपनी मातृभाषा में आसानी से और जल्दी पढ़ पाने और समझ पाने के कारण हो।

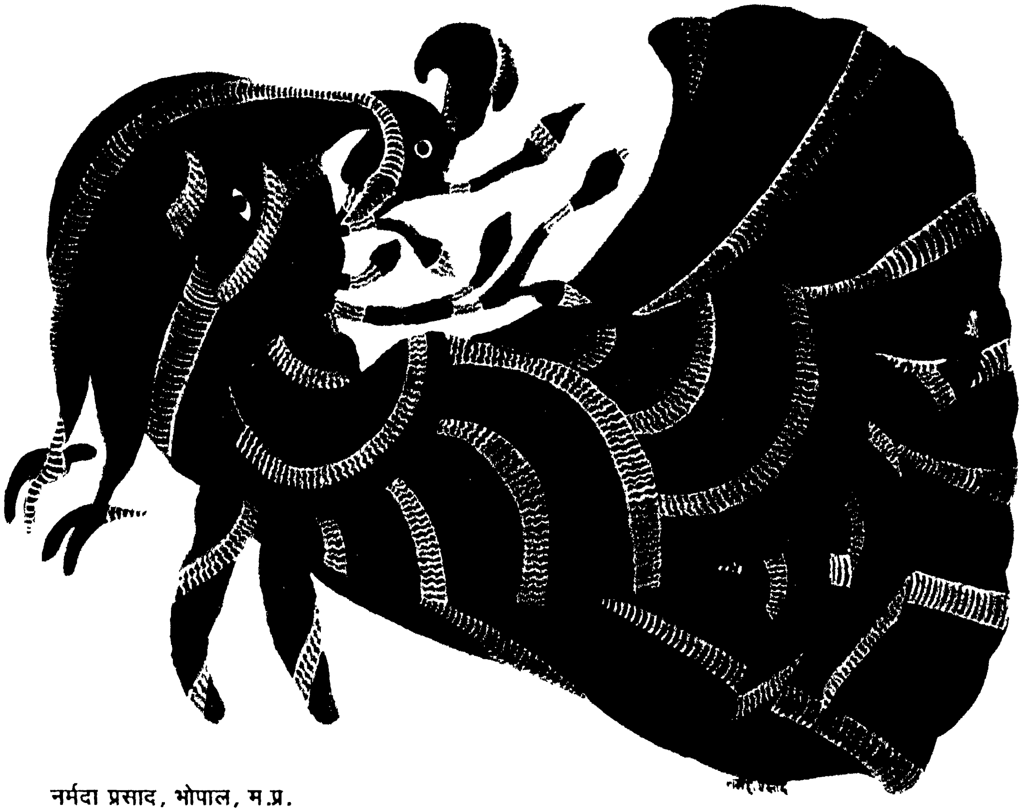
(यह अध्ययन राजघाट एजूकेशन सेंटर, राजघाट फोर्ट, वाराणसी के डॉ. ललित किशोर तथा तुषार तम्हाणे ने किया था।)



फ़रहान मुजीब, अलीगढ, उ.प्र



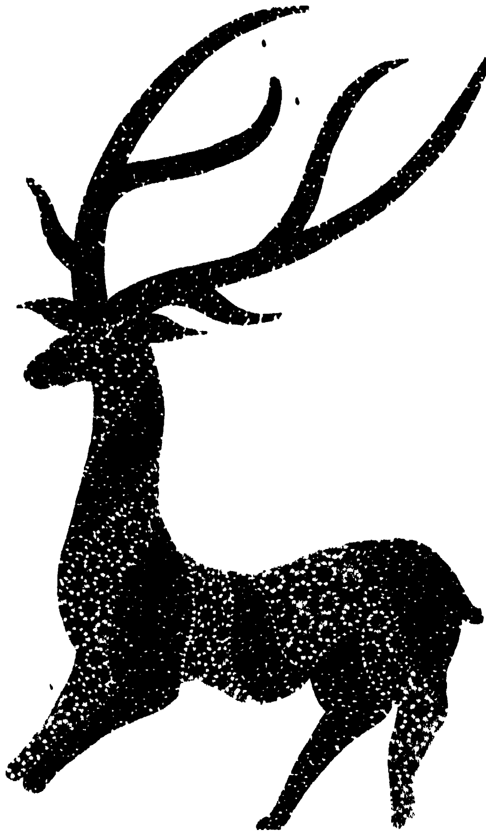
विष्णु चिंचालकर, इन्दौर, म.प्र.



नर्मदा प्रसाद, भोपाल, म.प्र.



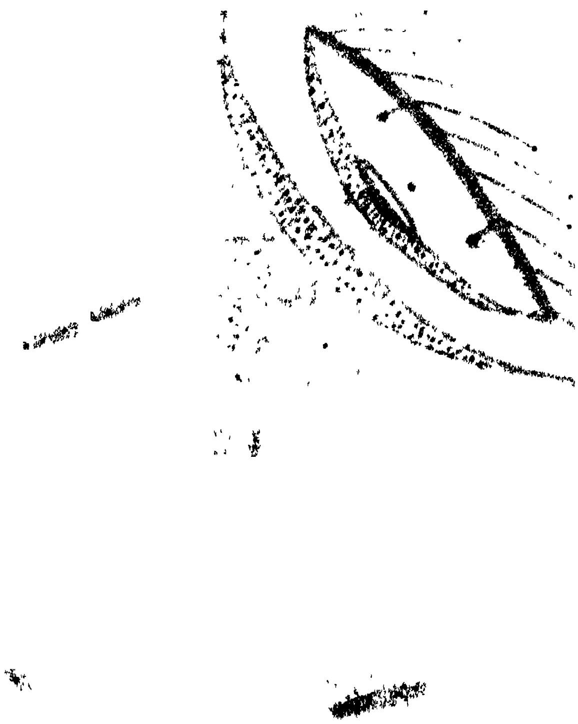
हुताराम अधिकारी, भोपाल, म.प्र.



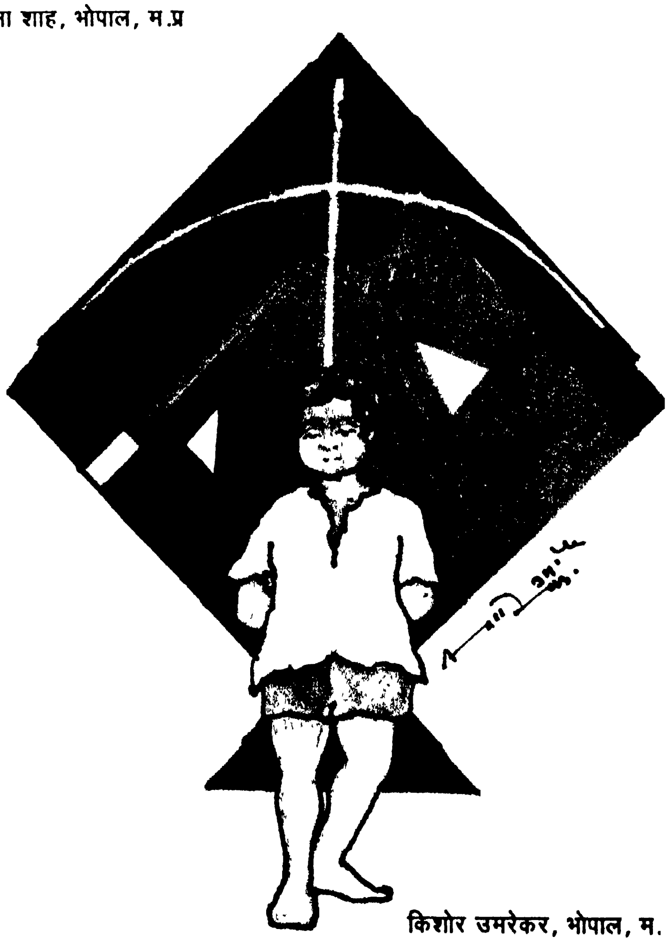
जनगढसिंह श्याम, भोपाल, म.प्र.



भूरीबाई, भोपाल, म.प्र.



राजुला शाह, भोपाल, म.प्र



किशोर उमरेकर, भोपाल, म.

पंचतंत्र की एक कहानी का नाट्य रूपांतरण

शास्त्र देखो शास्त्र

❑ भारत रत्न भार्गव

[पांच या छः लड़के-लड़कियों का मंच पर प्रवेश। इनमें से एक गुरू बन जाए बाकी सब चेले।]

चेला-एक : पूज्य गुरू जी।

गुरू : बोलो बच्चो।

चेला-दो : हमें आपने ज्ञान दिया।

गुरू : हॉं, हॉं बच्चो।

चेला-तीन : हमें आपने ध्यान दिया।

गुरू : हाँ, हॉं बच्चो।

चेला-चार : कर्म की राह हमें दिखलाई।

गुरू : हॉं दिखलाई।

चेला-दो : मेरी शिक्षा पूर्ण हो गई?

[गुरू उत्तर नहीं देते। इधर-उधर टहलने लगते हैं।]

सभी : पूज्य गुरु जी।

गुरू : बोलो बच्चो।

सभी : हमारी शिक्षा पूर्ण हो गई?

[गुरू फिर उत्तर नहीं देते।]

चेला-दो : पूज्य गुरू जी क्या मैं घर संसार बसाऊँ?

चेला-तीन : क्या मैं अपना ब्याह रचाऊँ?

गुरू : प्यारे बच्चो। तुमको घर संसार बसाना है?

चेले : हॉं गुरू जी।

गुरू : तुमको अपना ब्याह रचाना है?

चेले : हॉं गुरू जी।

गुरू : आर्शीवाद तुम्हें है मेरा। जीवन में तुम सफल कहाओ। अंतिम बात तुमसे कहनी है।

चेले : आज्ञा गुरू जी।

गुरू : मैंने चारों वेद पढ़ाए।

चेले : हाँ गुरू जी।

गुरू : मैंने तुमको धर्म सिखाया।

चेले : धर्म सिखाया।

गुरू : मैंने तुमको कर्म बताया।

चेले : कर्म बताया।

गुरू : जग की रीति तुम्हें समझाई।

चेले : हाँ समझाई।

गुरू : क्या तुम सब कुछ सीख गए हो?



[सब चुप रहते हैं।]

चेला-एक : इसका उत्तर हम क्या देंगे।

चेला-दो : अच्छा हो यदि ले लें सबकी आप परीक्षा।

चेला-तीन : अगर सफल होवें हम उसमें तो समझें हम सीख गए हैं।

गुरू : अच्छा बच्चो ये बतलाओ, सबसे बड़ा धर्म जीवन का क्या होता है?

सब : प्यार गुरू जी।

चेला-एक : सब धर्मों का ये है सार। सभी मानवों के प्रति प्यार।

गुरू : तुमने उत्तर सही बताया। लेकिन यह तोते-सा रटना है।

'सबसे प्रेम न करना सीखा,
तो यह ज्ञान अधूरा फीका।'

पोथी रटकर तो कोई भी पंडित कहला सकता है।

'ज्ञान वही है जिसका जग में होता है व्यवहार,
जिसका कुछ उपयोग न होवे वो शिक्षा बेकार।'

चेले : वो शिक्षा बेकार, वो शिक्षा बेकार, वो शिक्षा बेकार।

[सब मिलकर गाते हैं।]

गुरू : चार लड़कों की तुम सुनो कहानी, कैसे मूरख बन जाते हैं पंडित-ज्ञानी।

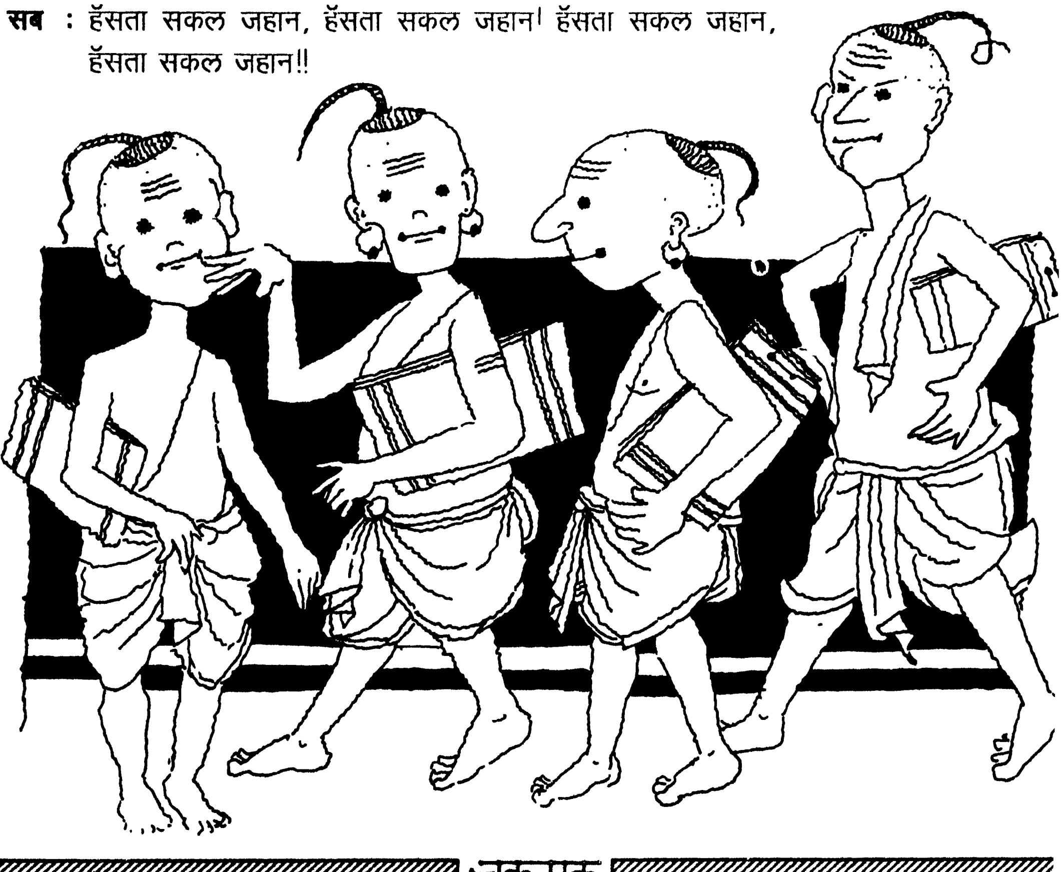
चेले : मूरख बनते पंडित-ज्ञानी?

गुरू : हाँ, कान्यकुब्ज के रहने वाले चारों लडके, लौटे बारह बरस बाद शास्त्रों को पढ़के। रट डाले शास्त्र और उपनिषद, वेद सब। सोचा सबने हुए बडे भारी पंडित अब।

चेले : हुए बड़े भारी पंडित अब।

गुरू : लेकिन वो सब रट्टू तोते, नहीं जगत का ज्ञान। मूरख बनकर वो पछताए, हँसता सकल जहान।

सब : हँसता सकल जहान, हँसता सकल जहान। हँसता सकल जहान,
हँसता सकल जहान!!



[गाते-गाते मंच से बाहर निकल जाते हैं। चार लड़कों का प्रवेश।]

एक : हमने चारों वेद पढ़े हैं। शास्त्र और उपनिषद पढ़े हैं। बोलो भैया...

सब : हाँ, भई हाँ।

दो : हम दुनिया में सबसे ज्ञानी। मूरख जग के सारे प्राणी। बोलो भैया...

सब : हाँ, भई हाँ।

तीन : जब पहुँचेंगे हम अपने घर। दिग्गज हम से जाएँगे डर। ज्ञान पताका फहराएँगे। सबको चटनी चटवाएँगे। चलो पंडितों....

सब : हाँ, भई हाँ।

चार : जल्दी-जल्दी।

सब : हाँ, भई हाँ।

दो : देख-भाल के।

सब : हाँ, भई हाँ।

तीन : अब रुक जाओ।

एक : क्यों, भई क्यों?

तीन : देख रहे हो, दो राहें हैं अब आगे की ओर। और ये तय करना बहुत जरूरी है, कौन नगर की ओर जा रही, कौन दूसरी ओर। कैसी सोची?

दो : बड़ी दूर की कौड़ी लाया।

एक : इसमें तीर कौन-सा मारा। ख़ास बात है, पता लगाना सही राह का। बोलो इसकी क्या तरक़ीब?

दो : सोचो भैया मिलकर सोचो।

[सब सोचते हैं, निर्णय नहीं कर पाते।]

तीन : मुझको सूझी बड़ी दूर की।

एक : जल्दी बोलो।

तीन : तुम दो जाओ एक राह पर। हम दोनों इस ओर।

[सब एक दूसरे की तरफ देखते हैं।]

दो : पचास प्रतिशत सही। दोनों तरफ जाने पर सही रास्ता मालूम हो ही जाएगा। लेकिन जो ग़लत दिशा में चले जाएँगे वो?

सब : वो ऽऽऽऽ?

तीन : बात पते की कही।

चार : इस सबसे एक बात साबित हुई। ***(सब आश्चर्य से उसे देखते हैं।)*** हम सबमें नम्बर चार यानी कि मैं सबसे अधिक अक़्लमंद हूँ।

सभी : कैसे?

चार : चूँकि इस मसले पर मैंने कोई राय नहीं दी। और शास्त्रों में लिखा है - दुविधा की स्थिति में मौन रहना सबसे उत्तम है। कहो लिखा है?

सब : हाँ, भई हाँ।

एक : यह एक दुविधा की स्थिति है इसलिए शास्त्रों के अनुसार हमें चुप रहना चाहिए।

सब : हाँ, भई हाँ।

[सब चुप होकर बैठ जाते हैं। 'दो' बोलने को होता है। 'एक' इशारे से चुप कराता है। एक ओर से कुछ लोग आते हैं। उनमें से चार आदमियों के कन्धों पर एक अर्थी है। अर्थी ले जाने वाले सभी दूसरी ओर को चले जाते हैं।]

दो : यही है रास्ता। ये लोग इधर से ही आए हैं। जिधर से लोग आए हैं वही रास्ता है।

तीन : ग़लत। रास्ता यह नहीं, यह है। जो गंतव्य की ओर जाता है वही रास्ता होता है।

चार : सुनो। कोई निर्णय देने से पहले ये बताओ कि ये लोग कौन थे। और क्या लिए जा रहे थे?

एक : इनके सिर पर पगड़ियाँ थीं इसलिए ये या तो क्षत्रिय थे या महाजन।

तीन : लेकिन इनके पास शस्त्र नहीं थे इसलिए ये क्षत्रिय नहीं हो सकते।

दो : तो ये महाजन थे। अब तय करो कि ये क्या ले जा रहे थे।

तीन : इनके हाथों में सिरकी या बॉस जैसी कुछ चीज़ थी। और यह जंगल में पैदा होती है इसलिए...

एक : ग़लत। महाजन हमेशा लाभ की वस्तु से हाथ लगाते हैं इसलिए यह कोई बहुत कीमती वस्तु होगी। जैसे-जैसे...

चार : महाजन। महाजन। मिल गया।

दो : क्या?

चार : शास्त्र देखो शास्त्र।

[अपने झोले में से पुस्तक निकालता है। पन्ने पलटता है। पढ़ता है।]

'महाजनो येन गत. स पन्था.,' यानी जिस मार्ग से महाजन जाएँ वही मार्ग है।

सब : वही मार्ग होता है।

एक : चलो।

सब : हॉ, भई हॉ।

[सब उसी रास्ते से जाते है जिससे महाजन अर्थी ले गए थे।]

दो : यह तो नगर नहीं है। यहाँ तो मुर्दे जल रहे हैं।

चार : जहाँ मुर्दे जलाते हैं, उसे श्मशान कहते हैं।

तीन : यानी हम श्मशान में आ गए।

सब : ***(रोते हुए)*** यानी हम श्मशान में आ गए हैं।

[तभी एक गधा रैंकता हुआ मंच पर आता है। सब रोना बन्द कर गधे की तरफ देखते हैं।]

चार : यह क्या है?

एक : कोई जानवर मालूम होता है।

दो : शेर होगा।

[शेर का नाम सुनते ही सब डर जाते हैं। गधा रैंकता है।]

तीन : नहीं, नहीं शेर नहीं हो सकता।

चार : क्यों नहीं हो सकता? कौन-से शास्त्र में लिखा है।

एक : यानी शेर हो सकता है। लेकिन अगर ये शेर होता तो हम सबको खा जाता।

तीन : शेर नहीं है तो फिर यह क्या है?

चार : शास्त्र देखो शास्त्र।

[पुस्तकें निकालते हैं। पन्ने पलटते हैं।]

एक : इस जगह का क्या नाम बताया था तुमने? हम कहाँ आ गए?

चार : हम श्मशान में आ गए।

तीन : इस समय यह प्रश्न नहीं है।

सब : तो क्या प्रश्न है?

तीन : प्रश्न यह है कि यह कौन है? यह क्या है?

दो : ***(अचानक)*** मिल गया। मिल गया। लिखा है - 'राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।' अर्थात् राजद्वार और श्मशान में जो मिले वो भाई होता है।

तीन : अवश्य ही यह हमारा भाई है।

[सब गधे को घेर लेते हैं। 'एक' उसके गले लिपटता है। 'दो' उसके पैर सहलाता है। 'तीन' उसे पुचकारता है। 'चौथा' गधे से लिपटता है, तो गधा दुलत्ती मारता है। 'चार' उछलकर दूर जा गिरता है।]

चार : हाय-हाय, मार डाला, मर गया रे। ***(गधे को मारने को आता है।)***

तीन : अरे-अरे क्या कर रहे हो। भाई की ग़लतियों को भी माफ़ करो।

दो : उसे प्यार करो।

एक : उसे सम्मान दो।

['चार' उसे प्यार करने लगता है।]



चार : अहा, कितना अच्छा है। इसे कहते हैं भाई।

[तभी एक ऊँट वहाँ आता है। इधर-उधर चक्कर काटता है। पहले सब उससे डरते हैं फिर धीरे-धीरे ऊँट की तरफ बढ़ते हैं। ऊँट तेज़ी से भागता है। चारों उसे पकड़ने दौड़ते हैं। आगे आगे ऊँट, पीछे चारों। मंच पर दो तीन चक्कर लगाते हैं। चारों थककर बैठते हैं। ऊँट दूसरी ओर रुकता है।]

तीन : यह क्या है?

दो : यह कौन है?

एक : बारह वर्ष विद्यालय में बिताए लेकिन ऐसा प्राणी कभी नहीं देखा।

दो : गुरू जी ने भी कभी नहीं बताया।

तीन : शास्त्र में भी इसके बारे में कुछ नहीं लिखा।

चार : पहले उसे पकड़कर लाऊँ?

सब : हॉ, हॉ लाओ।

[चार ऊँट के पास जाता है। ऊँट भागता है। हताश होकर चार वापस आता है।]

चार : *(हाँफते हुए)* मैं नहीं पकड़ सकता।

एक : मैं जाऊँ?

तीन : नहीं, मुख्य प्रश्न यह है कि यह प्राणी कौन है?

दो : इतना तेज़ कौन दौड़ सकता है।

एक : गति, तीव्र गति। *(सोचते हुए)*

तीन : शास्त्र, देखो शास्त्र।

[पोथियाँ पलटते हैं।]

दो : यह देखो, शास्त्र में लिखा है 'धर्मस्य त्वरितः गति' यानी धर्म की गति में बड़ी तेज़ी होती है।

चार : हॉ, हॉ ये अवश्य ही धर्म है, तभी मैं पकड़ नहीं पाया।

तीन : धर्म को आज तक कोई नहीं पकड़ पाया है।

एक : धर्म को अवश्य ही साथ में लेना चाहिए। शास्त्रों में लिखा है -
'धर्म विहीन जीवन नरक के समान है।'

दो : जाओ धर्म को साथ लेकर आओ।

एक : यह रस्सी ले जाओ इससे उसे लाने में सुविधा होगी।

[चार ऊँट के गले में रस्सी डालकर उसे पकड़ता है। चारों गाते हैं।]

सब : हमें धर्म मिला, धर्म मिला।
हमें भाई मिला, भाई मिला।

तीन : अभी तो हम नगर तक पहुँचे भी नहीं।

दो : नगर तक पहुँचते-पहुँचते तो हमें न जाने क्या-क्या मिलेगा।

[गधे और ऊँट को एक रस्सी से बाँधते हैं। उनके चारों ओर नाचते हैं गधा और ऊँट ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हैं। धोबी आता है।]

धोबी : हाय, हाय मेरा गधा।

सब : गधा। *(गधे को पहचानकर)*

धोबी : यही है यही है।

[गधे को पुचकारता है और उसकी रस्सी खोलता है।]

एक : यह गधा है?

धोबी : नहीं तो क्या तुम्हारा बाप है।

दो : बाप नहीं यह हमारा भाई है।
धोबी : इसका मतलब यह कि तू भी गधा है।
[धोबी गधे के साथ 'दो' को भी कान पकड़कर ले जाने लगता है।]
दो : अरे अरे मार डाला। मार डाला।
एक : यह क्या करते हो। हमारे भाईयों के साथ ऐसा दुर्व्यवहार।
[तीनों मिलकर दो को छुड़ाने की कोशिश करते हैं। मारपीट होती है। धोबी गधा लेकर जाता है। ऊँट भी भाग जाता है।]
चार : ***(रोते हुए)*** बन्धु गया, धर्म गया, और पड़ी मार रे।
तीन : डंडा लेकर धोबी आया, फोडा ये कपार रे।
सब : बन्धु गया, धर्म गया और पडी मार रे।
एक : पोथियों का ज्ञान हाय पड़ा नहीं पार रे।
दो : वेद पढ़े, शास्त्र पढ़े, फिर भी गए हार रे।
सब : बन्धु गया, धर्म गया और पडी मार रे।
[दो-तीन बार दोहराकर गाते हैं।]
दो : वह धोबी था?
तीन : नहीं वह धोबी नहीं था।
दो : वह राक्षस था।
एक : हॉ उसने अपनी माया से हमारे भाई और धर्म को, ऊँट और गधा बना दिया।
चार : वह धर्म विरोधी था। उसने हमारे बन्धु को हमसे छीन लिया।
तीन : वर्ना शास्त्रों मे लिखी बातें झूठ थोडे ही होती हैं।
एक : अब हम इस मायावी राक्षस से सावधान रहेंगे।
दो : चलो नगर की ओर चलें। महान व्यक्तियों के मार्ग में बाधाएँ तो आती ही हैं।
तीन : उठो।
सब : हॉ, भई हॉ।



एक : चलो।

सब : हाँ, भई हाँ।

[कहते कहते मंच के दो चक्कर लगाते हैं। इस समय इसी तरह के और संवाद जोड़ सकते हैं। मंच के दाईं ओर नदी मान सकते हैं।]

दो : रुको!

सब : क्यों, भई क्यों?

दो : नदी आ गई।

तीन : इसको कैसे पार करेंगे?

चार : नाव बना कर।

दो : नाव कहाँ से आए?

एक : प्रतीक्षा करो थोड़ी देर।

दो : नाव मिलेगी देर-सबेर।

तीन : देखो, देखो। ये क्या है?

चार : पत्ता।

एक : हॉ पत्ता। कैसे मज़े से तैर रहा है। इस पर बैठकर पार उतर जाएँगे।

तीन : लेकिन ये पत्ता है नाव नहीं है।

दो : हम डूब जाएँगे, हम मर जाएँगे।

एक : नहीं, ये पत्ता हमारा उद्धार करेगा देखो शास्त्रों में लिखा है - 'आगमिष्यति यतपत्रं तदस्मा तारयिष्यति'। यही हमारा उद्धार करेगा। ***(नदी में उतर कर पत्ता पकड़ता है।)***



एक : अरे, अरे मैं डूब रहा हूँ।

सब : डरो मत तुम्हारा उद्धार होगा।

एक : बचाओ मुझे, बचाओ।

तीन : अरे ये तो सचमुच डूब रहा है।

चार : इसे बचाना ही होगा।

['दो' सहायता के लिए उसे अपना हाथ देता है। दो भी फिसलकर नदी में गिरने लगता है। तीन और चार उसे पकड़ लेते हैं।]

दो : सर्वनाश हो गया। अरे, कुछ करो यह तो गया।

तीन : अरे, चोटी भर रह गई।

[चार पोथी के पन्ने पलटता है।]

दो : याद आया। शास्त्र में लिखा है....

चार : 'सर्वनाशे सम्पुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः।' अर्थात सम्पूर्ण का नाश होते देखकर पंडित लोग आधे को बचा लेते हैं और आधे को त्याग देते हैं।

दो : चोटी पकड़ लो। चोटी।

[तीन उसकी चोटी पकड़ता है। एक डूब जाता है उसकी चोटी तीन के हाथ में रह जाती है।]

चार : हाय, हाय। 'एक' डूब गया।

तीन : हाय, हाय। 'एक' बह गया।

दो : चिंता की कोई बात नहीं शास्त्रों के अनुसार हमने 'एक' का सम्पूर्ण नाश होते देखकर उसकी चोटी बचा ली है।

चार : हॉ लेकिन 'एक' हमें छोड़कर चला गया।

[तीनों मिलकर रोते हैं।]

दो : रोना-धोना बन्द करो और नगर की ओर चलो।

तीन : लेकिन यह नदी...

चार : किनारे-किनारे चलो।

सब : हाँ, भई हाँ।

तीन : चलो भाइयो।

सब : हॉ, भई हॉ।

[मंच के एक-दो चक्कर लगाते हैं।]

दो : रुक कर देखो।

चार : क्या, भई क्या?

दो : नगर आ गया।

सब : हां, भई हां।

तीन : अब हमें नगरवासियों के सामने पंडितों की तरह व्यवहार करना चाहिए।

चार : कैसे?

दो : यदि बात करें तो सूक्तियों में अन्यथा...

चार : अन्यथा?

दो : मौन रहना चाहिए।

तीन : शायद कोई आ रहा है। यहीं बैठ जाओ।

[एक व्यक्ति आता है।]

व्यक्ति : प्रणाम ब्राह्मण देवता।

[मौन रहकर तीनों आर्शीवाद देते हैं।]

व्यक्ति : आप कहाँ से आए हैं?

[इशारे से बताते है कि 'बहुत दूर से'।]

व्यक्ति : आप लोग बोलते क्यों नहीं? क्या आपने मौन धारण किया है?

[तीनों हाँ में सिर हिलाते हैं।]

व्यक्ति : मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

[तीनों एक दूसरे की तरफ देखते है। दो भूख का इशारा करता है। तीन, चार भी हाँ में सिर हिलाते हैं।]

व्यक्ति : आपके भोजन की व्यवस्था? मेरे अहोभाग्य। आप मेरे साथ पधारें।

[तीनों उसके पीछे जाते हैं। इशारे में बात करते हैं।]

व्यक्ति : आइए, बैठिए।

[व्यक्ति तीनों को बैठाकर चला जाता हैं।]

दो : ***(चुपके से)*** भोजन करते समय भी मौन रहना है क्या?

तीन : अगर बोलो तो शास्त्र सम्मत। समझे।

चार : वर्ना चुप रहना ज़्यादा अच्छा है।

[व्यक्ति तीनों को खाना परोसता है।]

व्यक्ति : भोजन ग्रहण कीजिए।

दो : ये क्या है? लम्बी-लम्बी, दीर्घ-सूत्री।

व्यक्ति : ये सेमई है, ख़ास धर की बनी।

तीन : सेमई! ये क्या होती है।

व्यक्ति : ये एक प्रकार का भोजन है।



[चौथा शास्त्र पलटता है।]

चार : ठहरो, अभी ग्रहण मत करना।

सब : क्या हुआ?

चार : शास्त्र में लिखा है - 'दीर्घ-सूत्री विनश्यति'। अर्थात् लम्बे तंतुओं वाली वस्तु नष्ट हो जाती है। ये नष्ट होने वाली वस्तु को हमने ग्रहण कर लिया!

तीन : तो हम भी नष्ट हो जाएँगे।

व्यक्ति : यह क्या कह रहे हैं आप। यह तो स्वादिष्ट व्यंजन है।

चार : तुम्हारा मतलब है शास्त्र झूठे हैं?

तीन : हम शास्त्र पारंगत हैं। हमारा आचरण शास्त्र के अनुसार होता है।

व्यक्ति : आप दूसरी चीज़ खाइए।

दो : ***(रोटी उठाकर)*** यह क्या है? बड़ी-बड़ी, गोल-गोल।

व्यक्ति : ये रोटियॉ हैं, रोटियाँ।

तीनों : रोटियाँ?

[तीनों पोथियाँ पलटते हैं।]

दो : देखते हैं, ये शास्त्र सम्मत हैं कि नहीं।

तीन : इसे खाने से कोई अनिष्ट तो नहीं होगा।

चार : मिल गया। लिखा है - 'अति विस्तार विस्तीर्ण तद्‌भवेन्न चिरायुषम्।' अर्थात बहुत फैली हुई वस्तु आयु को घटाती है।

दो : आयु को घटाती है!

तीन : हम इसे नहीं खा सकते।

व्यक्ति : धरती के सभी मनुष्य यही खाते हैं।

चार : इसीलिए वे मर जाते हैं।

व्यक्ति : आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आ रहीं। ख़ैर आप ये बाटी खाइए।

[बाटी परोसता है।]

दो : अहा! ये ठीक है। गोल-गोल, छोटी-छोटी।

तीन : सुन्दर, अति सुन्दर। छेद भी है इसमें।

चार : रुको, पहले जान लेना ज़रूरी है कि शास्त्र सम्मत है या नहीं।

तीन : ठीक है। ***(शास्त्र पलटता है।)***

दो : क्या कहते हैं शास्त्र।

तीन : 'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति', अर्थात छिद्र वाली वस्तु में बहुत अनर्थ होते हैं।

चार : अनर्थ होता है।

दो : तुम हमें ऐसी वस्तु खिलाकर हमारा अनिष्ट करना चाहते हो?

तीनों : तुम धूर्त हो, तुम षड़यंत्रकारी हो।

[तीनों मिलकर उस व्यक्ति को घेर लेते हैं। व्यक्ति चिल्लाने लगता है। तीन चार लोग आते हैं।]

व्यक्ति-दो : क्या बात है? क्या हुआ?

व्यक्ति-एक : ये लोग मुझ पर दोष लगा रहे हैं। मैंने इन्हें भोजन के लिए आमंत्रित किया। ये बदले में मुझे गालियाँ दे रहे हैं।

दो : तुम हमें शास्त्र के विरूद्ध चीज़ें खिलाकर हमारा विनाश करना चाहते हो।

तीन : हमें मारना चाहते हो।

व्यक्ति-दो : **(पहले व्यक्ति से)** क्या तुमने इन्हें शास्त्र-विरूद्ध भोजन कराया।

व्यक्ति-एक नहीं, पहले मैंने सेमई दी। वो इन्होंने नहीं खाई। फिर रोटी भी नहीं खाई। फिर मैंने बाटी परोसी तो ये मुझे गालियाँ दे रहे हैं।

चार पहले जो वस्तु दी वो दीर्घ-सूत्री थी। फिर फैली हुई बड़ी चीज़ दी। उसके बाद छिद्रों वाली चीज़ दी।

दो शास्त्रों में लिखा है ये चीज़ें विनाशकारी हैं।

व्यक्ति-दो तुम लोग पंडित हो।

तीन हाँ।

व्यक्ति-दो तुम शास्त्र पारंगत हो।

तीनों हाँ।

व्यक्ति -दो असल में तुम तीनों मूर्ख हो।

तीनों मूर्ख।

व्यक्ति-एक हाँ, महामूर्ख। ज़रा लाठियाँ लाना। इन्हें थोड़ी अक़्ल दे दी जाए।

[तीनों आगे भागते हैं बाकी सब पीछे-पीछे। गुरू और चेले फिर मंच पर आते हैं।]

चेले गुरू जी।

गुरू बोलो बच्चो।

चेला-एक आपने बहुत अच्छी कहानी सुनाई।

गुरू प्यारे बच्चो सोच समझकर हर काम करो। और..

चेले ज्ञान वही है जिसका जग में होता है व्यवहार।
जिसका कुछ उपयोग न हो, वो शिक्षा बेकार।
वो शिक्षा बेकार। वो शिक्षा बेकार। वो शिक्षा बेकार।

[गाते-गाते सभी बाहर निकल जाते हैं।]



वैज्ञानिक दृष्टिकोण का एक ज्वलन्त उदाहरण

❑ जयंत नार्लीकर


फ्रेड हॉयेल (1915)

सन् 1924 की घटना है। इंग्लैण्ड के यार्कशायर इलाक़े में एक नौ वर्ष का बालक तीसरी कक्षा में पढ़ रहा था। इतनी-सी उम्र में भी वह अपने अध्यापक-अध्यापिकाओं को कठिन सवाल पूछकर हैरान किया करता था– ऐसा क्यों? यह कैसे? वह क्या? आदि शंकाओं का समाधान हुए बिना वह शिक्षक की बात मानता नहीं था, जबकि अन्य छात्र-छात्राएँ चुपचाप शिक्षक की बताई बातें सही मानकर रट लिया करते थे।

एक दिन कक्षाध्यापिका ने सबसे कहा, ''देखो मेरे बताए फूलों के नमूने बटोरकर लाओ।'' उसने बीस फूलों की सूची सबको दी। उनके बारे में कुछ जानकारी भी दी।

यह बालक जब फूल बटोरकर लाया तब एक फूल को देखकर उसका मन खटका। उस फूल की छह पंखुड़ियाँ थीं, जबकि कक्षाध्यापिका ने बताया था कि ऐसे फूलों में पाँच पंखुड़ियाँ हुआ करती हैं। 'आज मैने एक नई जानकारी हासिल की' इस आनन्द के साथ उसने अपना वह फूल कक्षाध्यापिका के सामने पेश किया।

''मैडम, देखिए यह फूल आपके बताए नियम को भंग कर चुका है। यदि इसमें चार पंखुड़ियॉं होतीं तो मैं मान जाता कि एक गिर चुकी होगी। लेकिन छह पंखुड़ियाँ कैसे आ पाईं जबकि आपने कहा था कि ऐसे सभी फूलों में पॉंच पंखुड़ियॉं हुआ करती हैं?–''

'फटाक---' एक तमाचा लगा बालक के बाएँ कान पर ज़ोरों से।

''गुस्ताख़ी मत कर। जैसा मैंने बताया वही सच है।'' मैडम ने फूल को फेंक दिया।

बालक दुखी हुआ। 'अपनी ग़लती स्वीकार तो नहीं की बल्कि मैडम ने मुझे ही चपत लगाई।' वह फूल उठाकर सीधे घर गया। मॉं से बोला, ''मैं ऐसे स्कूल में नहीं जाऊँगा जहॉं अध्यापिका अपनी ग़लती नहीं मानती।''

मॉं उसे प्रधानाध्यापक और फिर स्कूल इन्स्पेक्टर के पास ले गई। सुनवाई में बालक ने उस फूल को पेश किया और पूरा क़िस्सा सुनाया। फूल की गवाही को इन्स्पेक्टर साहब मान गए। बालक को इजाज़त मिली कि तीसरी कक्षा की पढ़ाई घर पर ही करे पर अगले साल दूसरे स्कूल में भर्ती हो।

वह बालक आगे चलकर विश्वविख्यात वैज्ञानिक - एक खगोल विशारद - बना। उसे बड़े सम्मान प्राप्त हुए। लेकिन आज भी सबूत के बिना वह वैज्ञानिक दलीलें नहीं मानता भले ही उसे विरोध एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़े। वैज्ञानिक दृष्टिकोण इसी को कहते हैं।

उस वैज्ञानिक का नाम है 'फ्रेड हॉयेल'।

❑❑❑





सवा

बबलू बस करते सवाल हैं।
क्या उत्तर दें, बुरा हाल है।।

बबलू तीन बरस के बच्चे,
मगर अक्ल के तनिक न कच्चे।

नई चीज कोई दिख जाती,
पूछे, कैसे काम है आती?

कौन फूल में गध भरे जी?
पत्ते कैसे दिखे हरे जी?

मिट्टी में सोधापन क्यो है?
मिर्चों में तीखापन क्यों है?

मेघा जल बरसाते कैसे?
इन्द्रधनुष दिख जाते कैसे?

सूरज-चॉद कहॉ सुस्ताते?
फिर प्रकाश के फूल खिलाते।

कुदरत का कैसा कमाल है?
क्या उत्तर दें, बुरा हाल है।।

बबलूजी जिज्ञासु बडे हैं,
मन में अनगिन प्रश्न खडे हैं।









उलझन उनकी जाती बढती,
नई चीज अचरज से भरती।

साथी से, टीचर से पूछे,
मॉ-पापा, घर-भर से पूछे।

उल्टे-सीधे प्रश्न अनोखे,
कुछ अटपटे और कुछ चोखे।

अगर सवाल टालना चाहे,
बबलू जी की उलझे राहे।

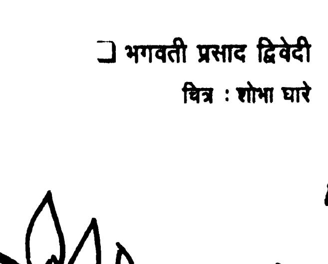
हर जिज्ञासा शान्त करेगे,
उन्हे नहीं हम भ्रान्त करेगे।

उत्तर पा बबलू निहाल है।
मन में फिर कोई सवाल है।।

❑ **भगवती प्रसाद द्विवेदी**

चित्र : शोभा घारे



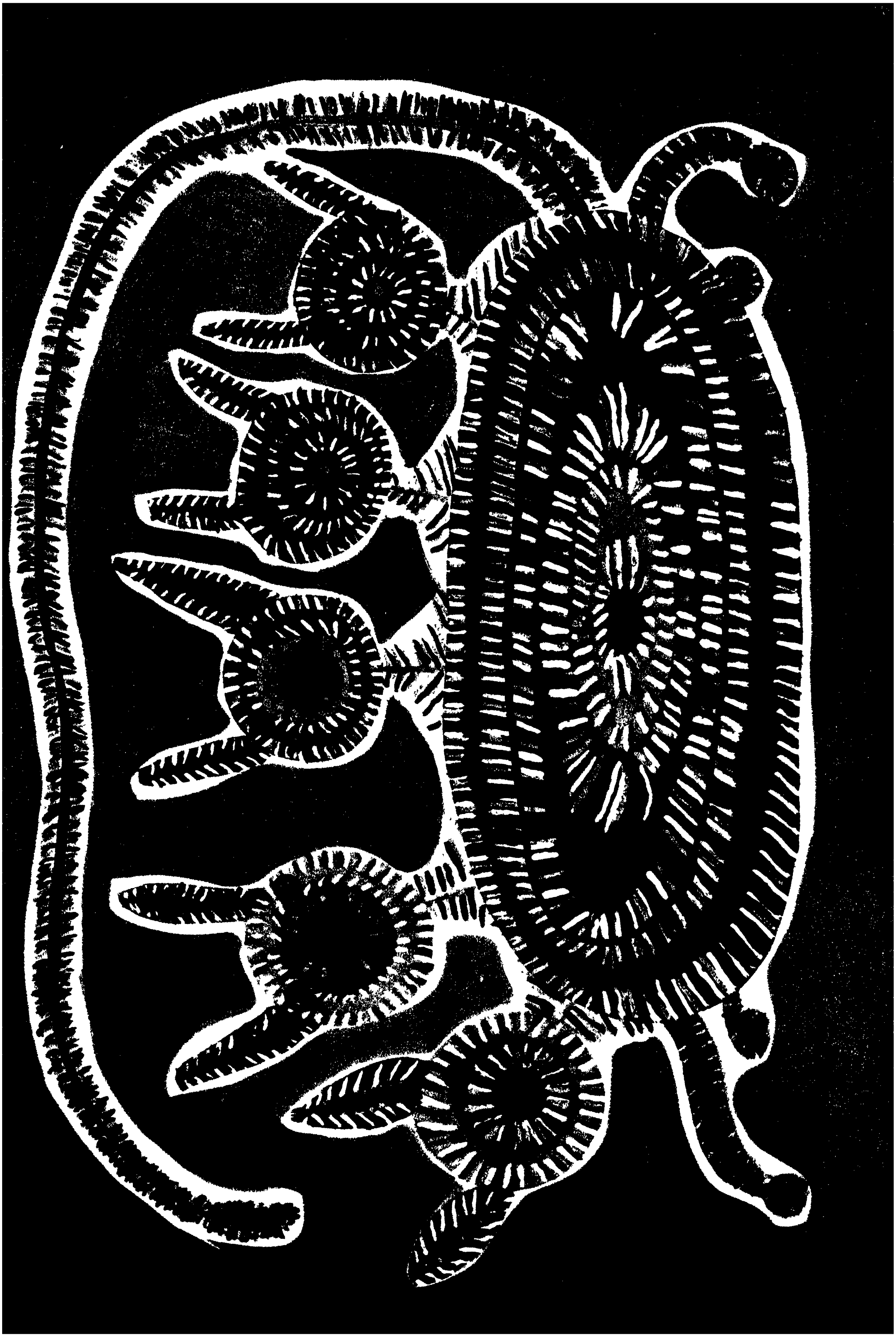




कैरन हेडॉक, चण्डीगढ़



वृन्दा, भोपाल



मोतियों का वर्गीकरण

उद्देश्य

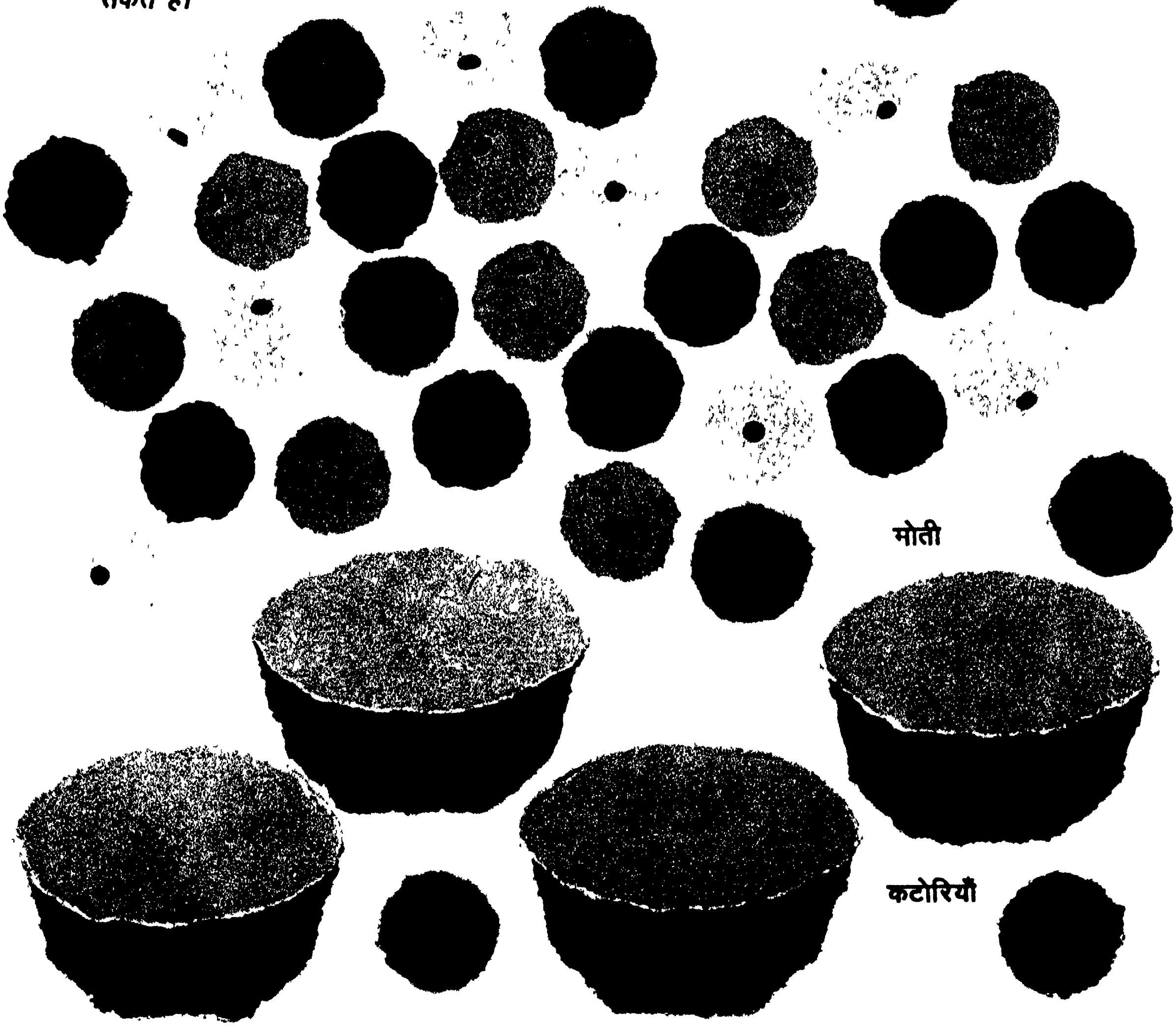
रंगों के आधार पर मोतियों का वर्गीकरण

सामग्री

थैली में करीब 100 मोती (चार रंगों में) जितने रंग उतनी कटोरियाँ या पिरोने के लिए धागे।

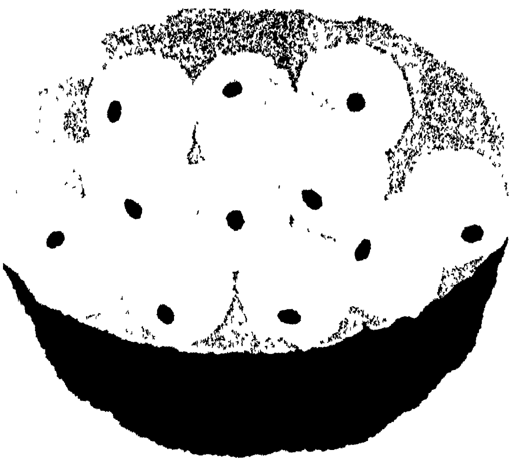
बच्चों की संख्या

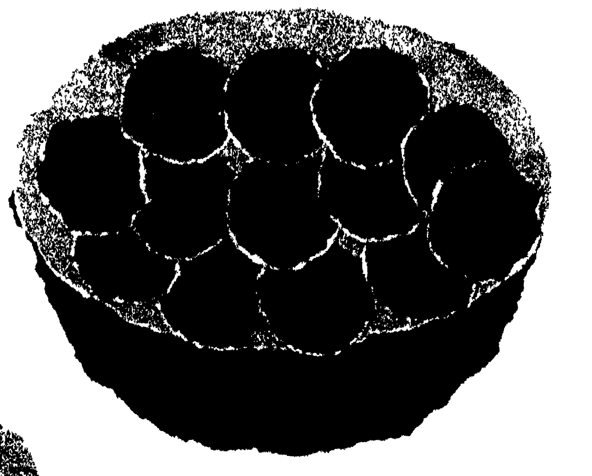
मिले-जुले रंगों के 100 मोतियों से 3-4 बच्चे खेल सकते हैं।

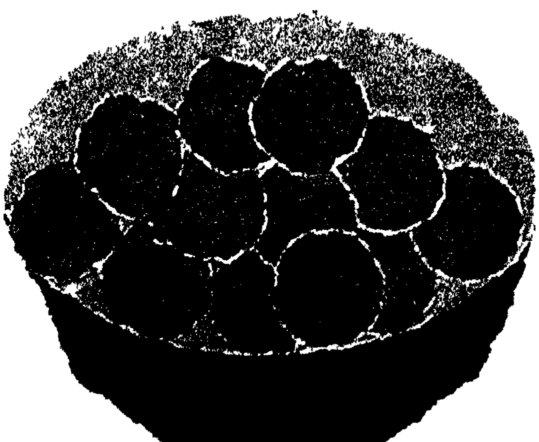


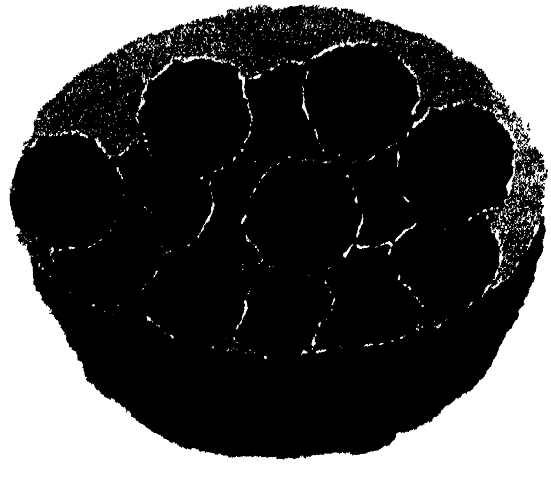
बच्चों को थैली भरकर मिले-जुले रंगों के मोती दें, और रंगों के अनुसार उन्हें छाँटने के लिए कहें। वे ऐसा अकेले या 3-4 की टोली में मिलकर कर सकते हैं। बच्चे इन मोतियों को रंगों के आधार पर छाँटकर कटोरियों में डालें या धागे में पिरोएं। इस तरह से रंगों के बारे में बातचीत हो सकती है और मोती गिने भी जा सकते हैं। कटोरी पर रंग का नाम व मोतियों की संख्या लिखकर लगा सकते हैं।











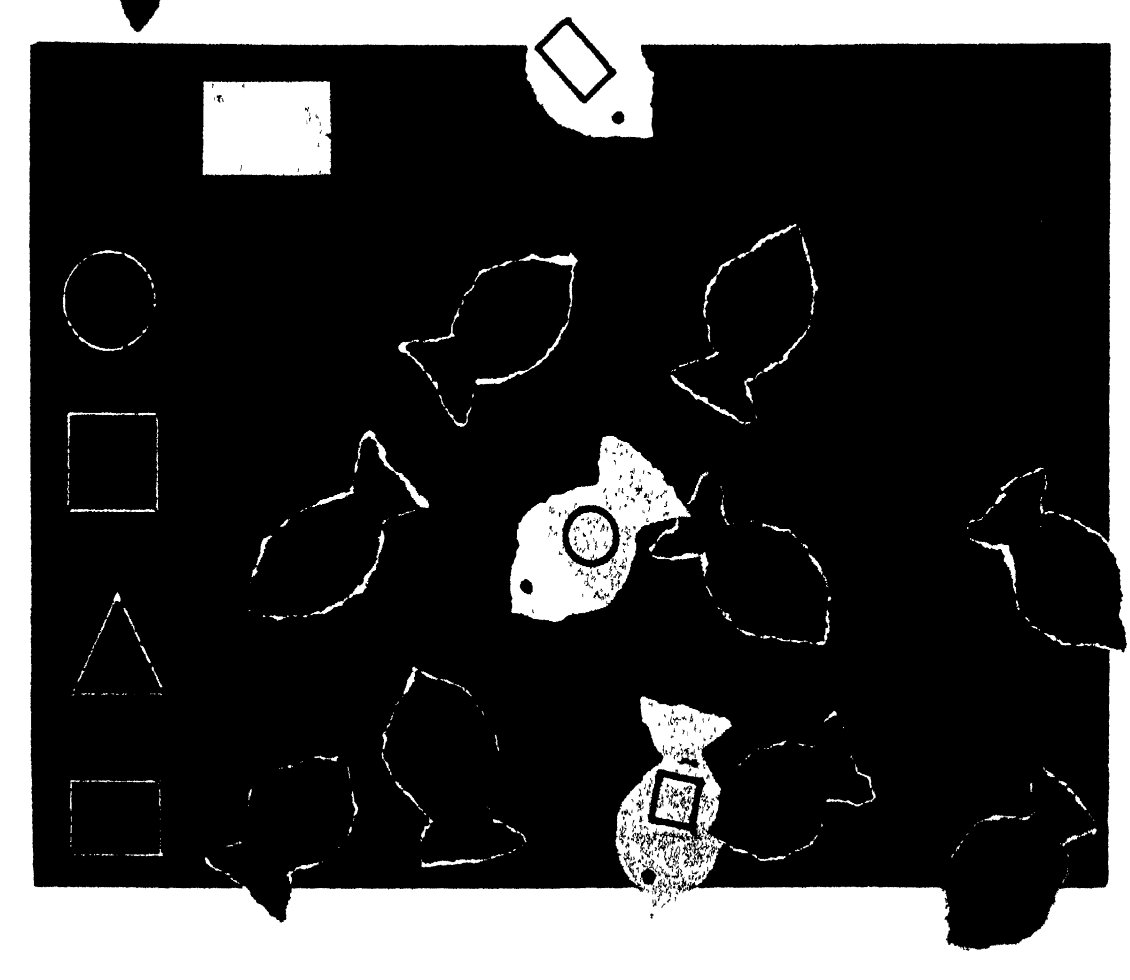
शिक्षकों को पूरी सामग्री प्रस्तुत करना चाहिए। रंगों के विषय में बात करना चाहिए। रंगों के नाम व मोतियों की संख्या के लेबल बनाकर लगाने में मदद करना चाहिए।

मछली दौड

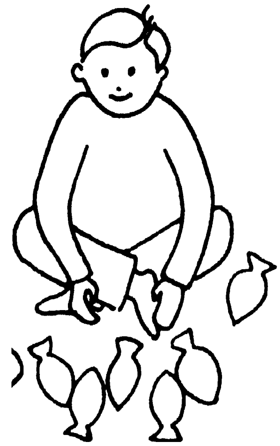
उद्देश्य
रंग और आकार-दो आधारों पर एक साथ वर्गीकरण करना

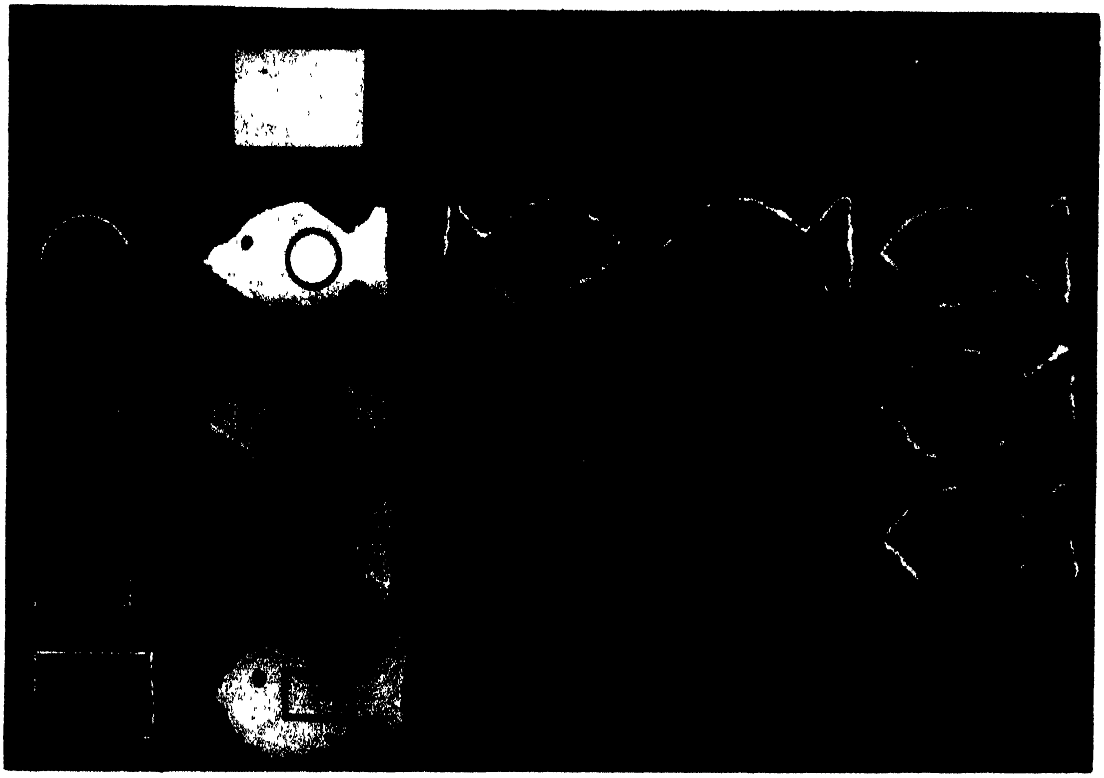
सामग्री
मछली दौड़ का बोर्ड
16 मछलियाँ जिन पर नीले, पीले, लाल और हरे रंग से बोर्ड पर दिए गए चारों आकार बने हों।

बच्चों की संख्या
इस खेल को पाँच बच्चे खेल सकते हैं।



एक बच्चा जो कि समुन्दर है, सारी मछलियों को उलटकर अपने पास रख लेता है। बाकी चार बच्चे अपनी पसन्द का रंग चुनते हैं। अब समुन्दर क्रम से हर बच्चे को मछली देता है। यदि मछली उसके अपने रंग की है तब तो वह उसे अपने चुने हुए रंग के नीचे और सही आकार के सामने रख देता है वरना समुन्दर को लौटा देता है। यह सिलसिला तब तक जारी रहता है जब तक किसी बच्चे के चारों खाने भर नहीं जाते। जिसके खाने पहले भरते हैं वह जीतता है और समुन्दर का स्थान ले लेता है। यदि कोई बच्चा मछली को गलत स्थान पर रखता है तो उसे वह मछली समुन्दर को लौटानी पड़ती है।







● *शिक्षक को बच्चों के लिए सामग्री प्रस्तुत करके खेल समझाना चाहिए और बच्चा सही स्थान पर मछली रख रहा है या नहीं, यह देखने के लिए अन्य बच्चों को कहना चाहिए।*

❑ दीप्ति वैद्य
इंड्रस्ट्रियल डिजाइन सेंटर, बम्बई



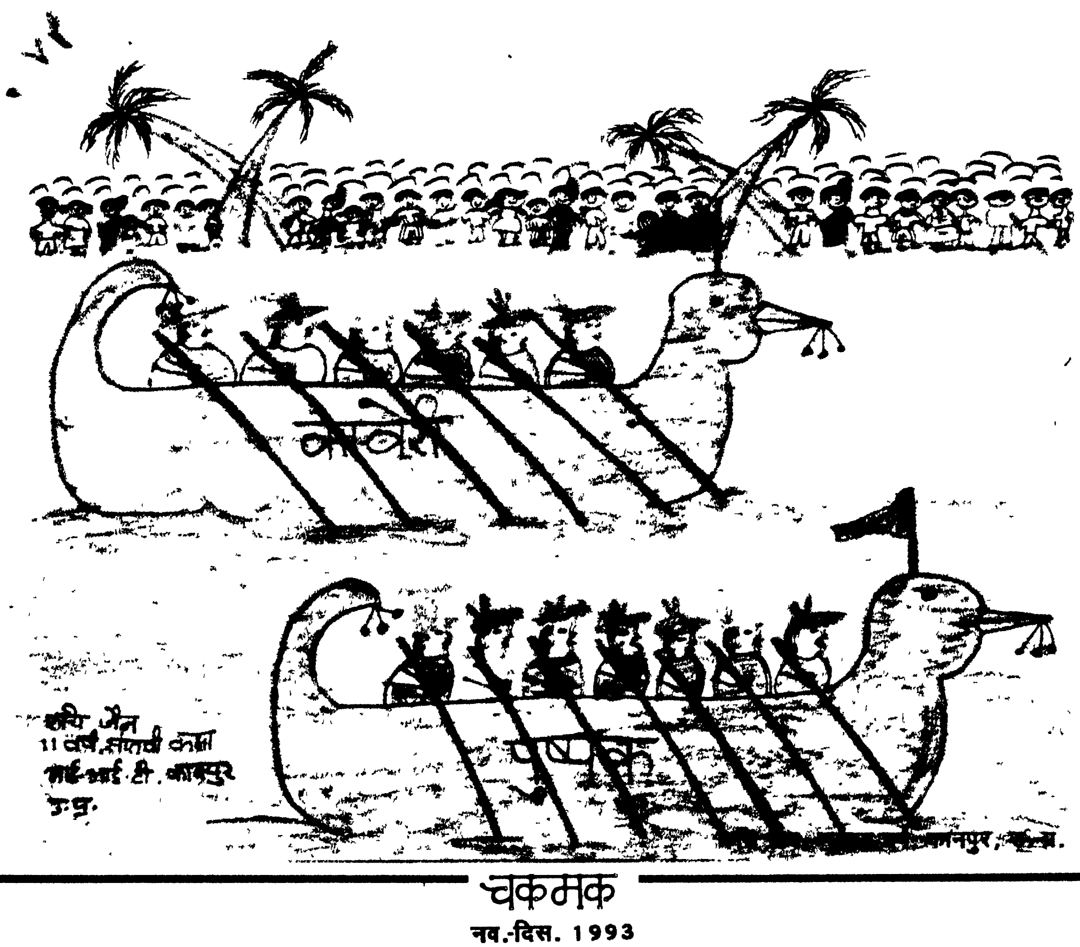
सुनयना सिह, आठवीं, लखनऊ, उ. प्र.



यशोधन गंदगे ग्यारह वर्ष,
भोसरी, पुणे, महाराष्ट्र



प्रियंवदा, चौथी, पटियाला, पंजाब





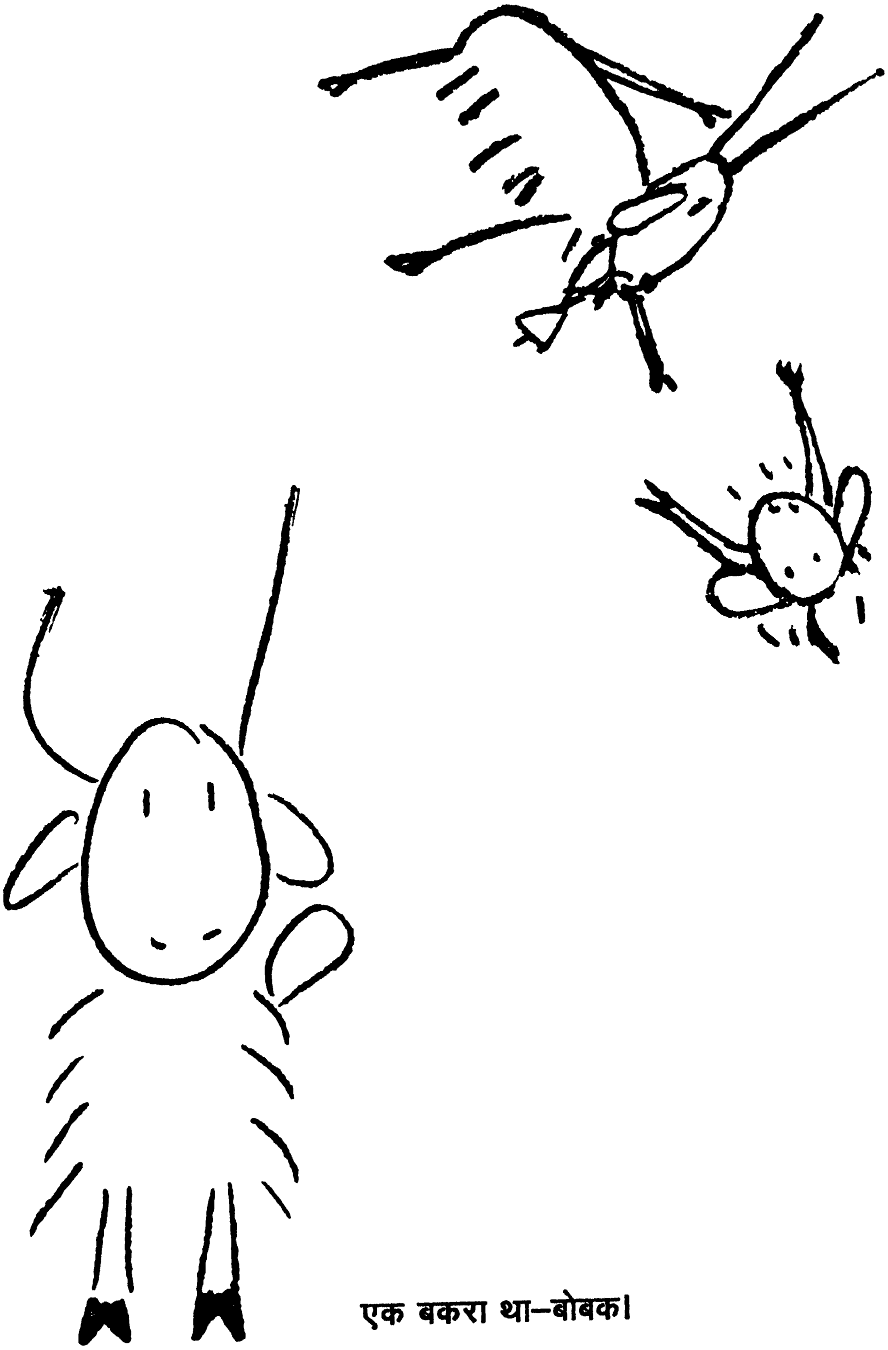
थाग सांग मोसाग, चौथी, लेडोमियाओं, घांगलाग, अरुणाचल प्रदेश



रूशती, सात वर्ष, दिल्ली

बोबक बकरा

चित्र एवं कहानीः मनरो लीफ़

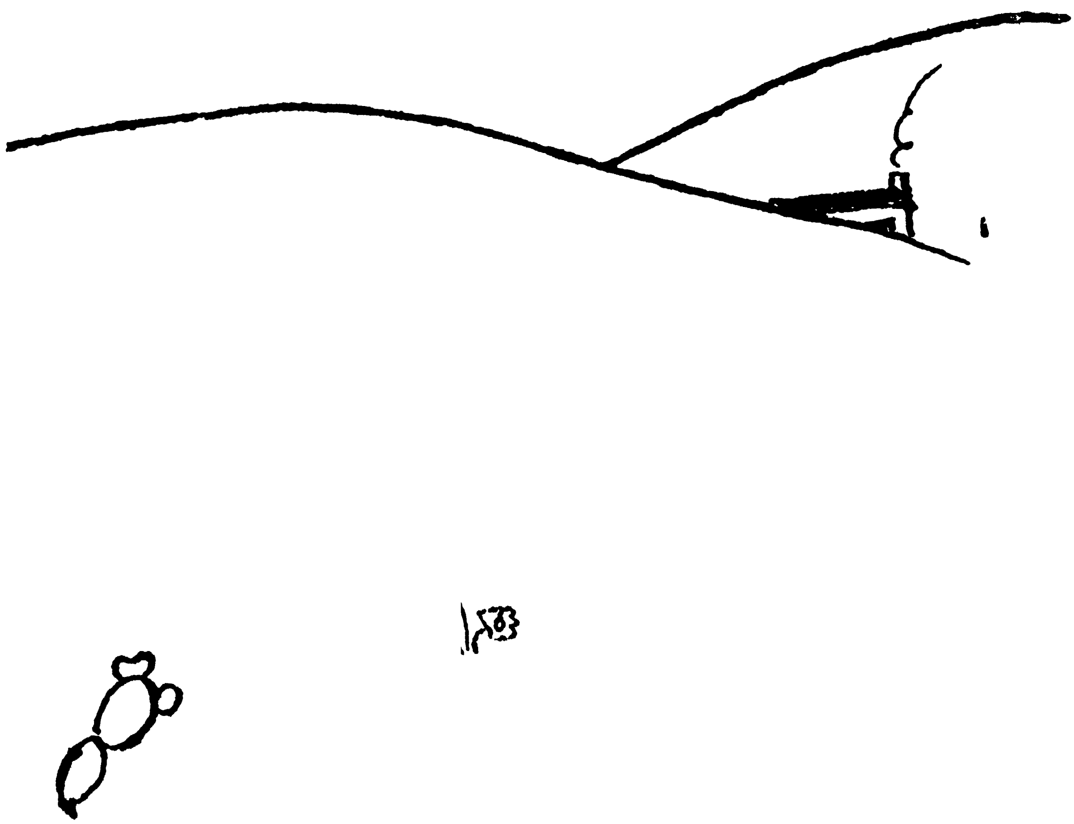


एक बकरा था—बोबक।



और वह रहता था

राजपूताने में।



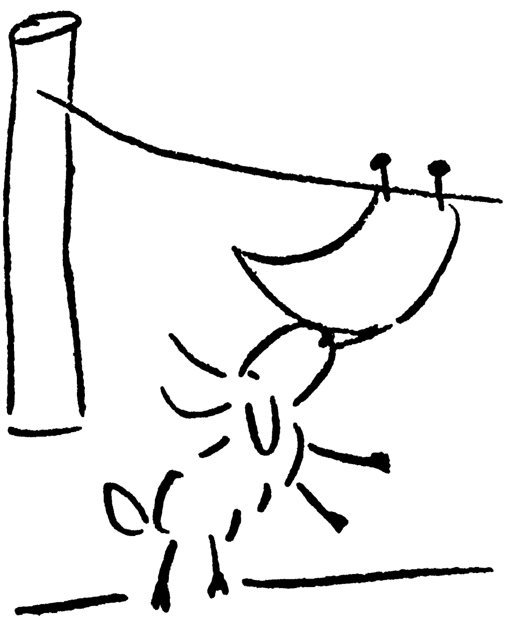
उसे खाने का बहुत चाव था, वह इसकी भी परवाह न करता था कि वह क्या खा रहा है।

वह हर चीज़ पर मुँह मार देता था।



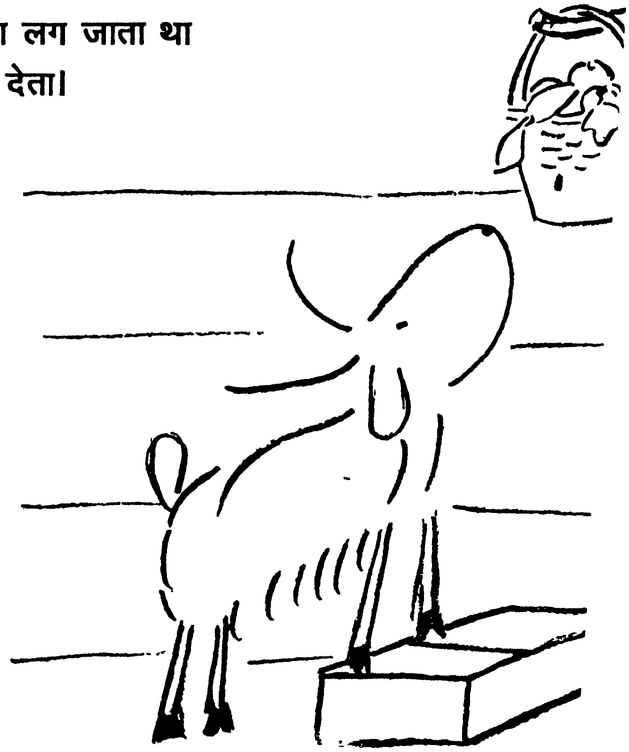


यों तो वह काँटेदार झाड़ियों की पत्तियाँ खाता था।



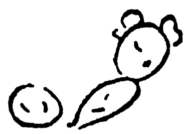
लेकिन सूखने के लिए फैले हुए कपड़ों पर भी मुँह मारने से न चूकता।

अगर रसोई के अन्दर घुसने का मौका लग जाता था तो छींके में टँगी हुई सब्ज़ी पर भी मुँह मार देता।



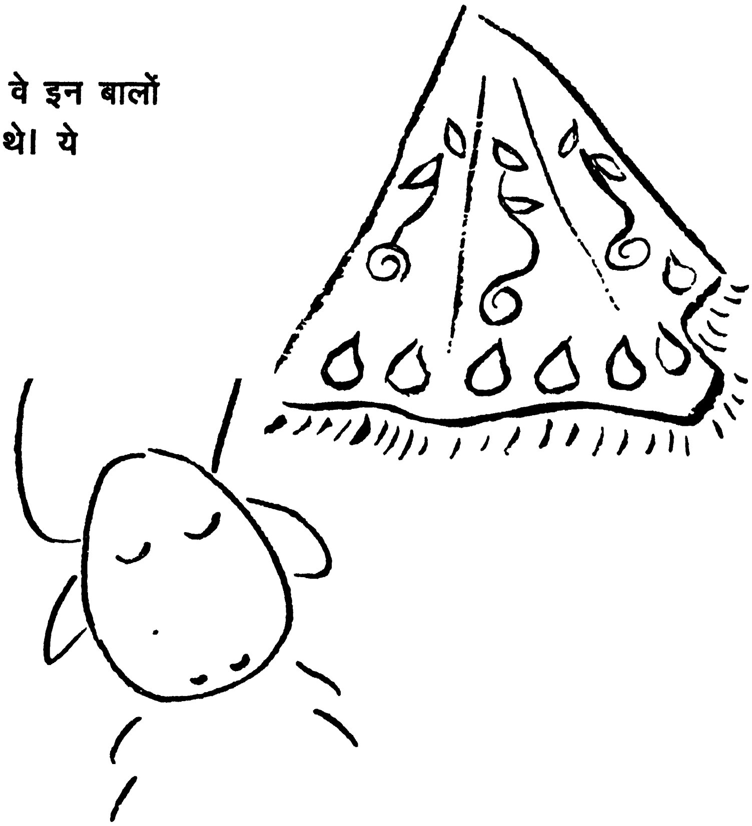


और कभी-कभी वह नागफनी पर भी मुँह मार देता था, लेकिन जब भी वह ऐसा करता, वह बहुत पछताता था।

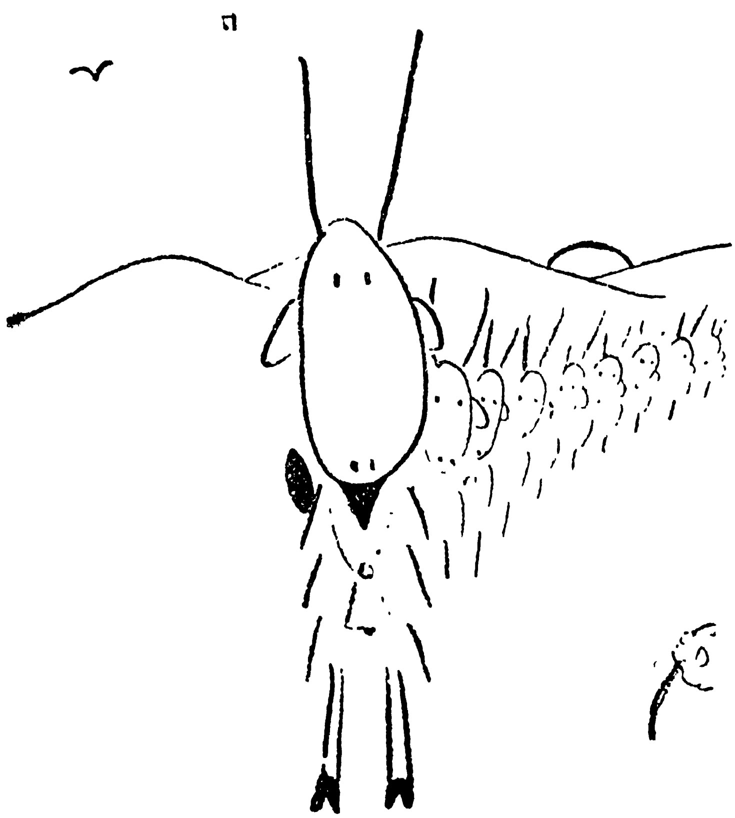




बोबक बहुत से दूसरे बकरों के साथ एक बाड़े में रहता था। उसे बहुत ज़्यादा काम नहीं करना पड़ता था। उसका बस यही काम था कि वह बोबक बना रहे। कभी-कभी उसके बाल भी काट दिए जाते थे।

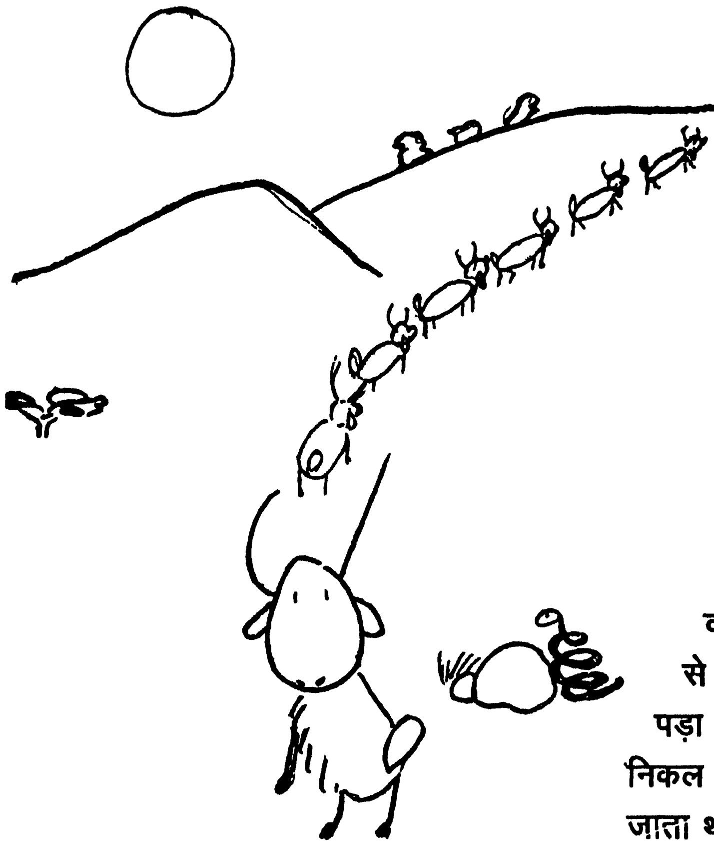


जो लोग उसके बाल काटते थे वे इन बालों को दूसरे लोगों के हाथ बेच देते थे। ये लोग उसके बाल से नमदे (कम्बल) बनाते थे या गद्दों में भर देते थे। बोबक की बला से। उसे इस बात से क्या मतलब था कि लोग उसके बालों का क्या करते थे। उसे तो बस इससे मतलब था कि लोग बाल काटते समय उसकी खाल न काट दें।



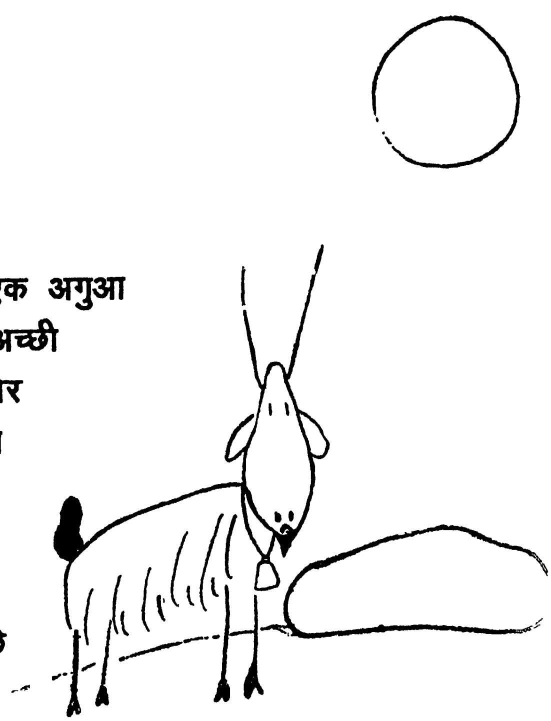
जिस बाड़े में बोबक रहता था उसमें कुछ बकरे ऐसे थे जो अगुआ बकरे कहलाते थे, क्योंकि वे जहाँ भी जाते थे दूसरे बकरे उनके पीछे-पीछे जाते थे।

अगर कोई अगुआ बकरा किसी जगह पर होता था और उस जगह से उसका जी उकता जाता था तो वह किसी दूसरी जगह की ओर चल पड़ता था। और बाकी बकरे उसकी दुम में लगे हुए उसके साथ हो लेते थे। कभी यह नई जगह पहले वाली जगह से अच्छी होती थी और कभी बुरी। लेकिन जगह अच्छी हो या बुरी, जहाँ वह अगुआ बकरा जाता था वहाँ दूसरे बकरे भी उसके साथ जाते थे।

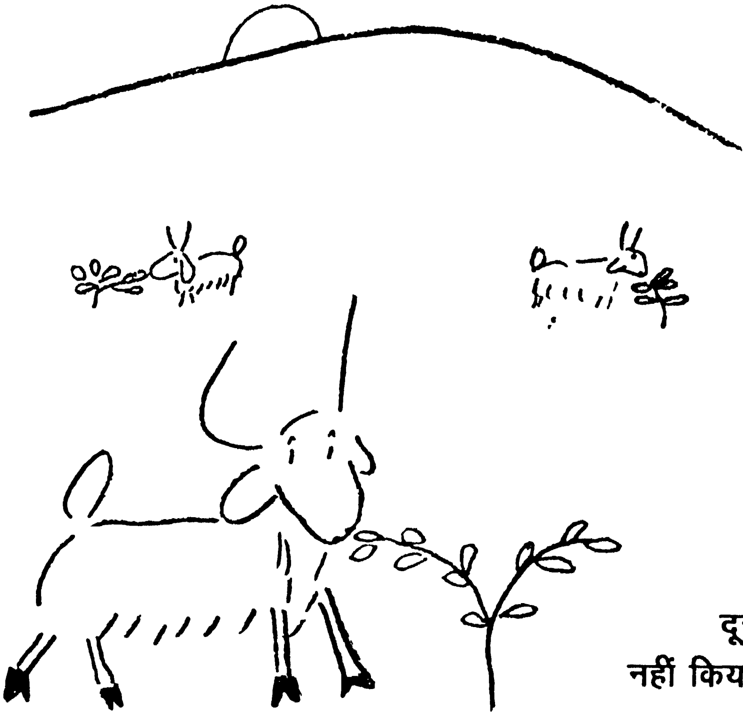


बोबक भी जाता था। पर वह यह नहीं बता सकता था कि वह क्यों जाता था। उसे अगुआ बकरे बहुत अच्छे नहीं लगते थे। पर उनमें से कोई उसे बहुत बुरा भी नहीं लगता था।

इसलिए जब सब बकरे अगुआ के पीछे चलते थे, तो बोबक के लिए भी सबसे आसान यही होता था कि वह भी साथ चल पड़े। और वह करता भी यही था। लेकिन चलने से पहले वह इतनी देर तक सोच में पड़ा रहता था, कि बाक़ी सब बकरे आगे निकल जाते थे और वह सबसे पीछे रह जाता था।

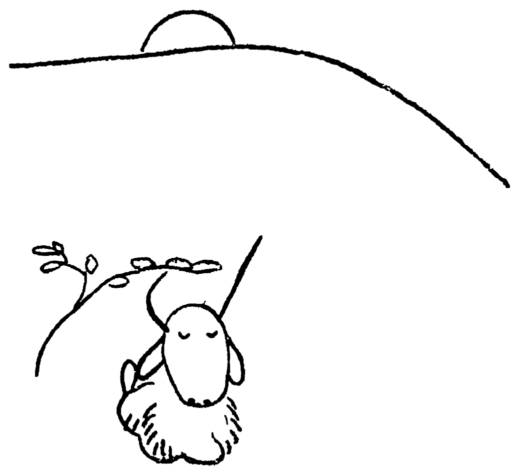


एक दिन बहुत गरमी पड़ रही थी। एक अगुआ बकरे ने सोचा कि जिस जगह वह था वह अच्छी नहीं है, इसलिए वह किसी नई जगह की ओर चल पड़ा। उसे कुछ-कुछ याद आया कि उसने पहाड़ी के दूसरी ओर एक ऐसी घास देखी थी जो उसने पहले कभी नहीं चखी थी। वह उस नई घास की खोज में चल पड़ा और बाकी बकरे उसके साथ हो लिए। सबसे पीछे बोबक भी था।

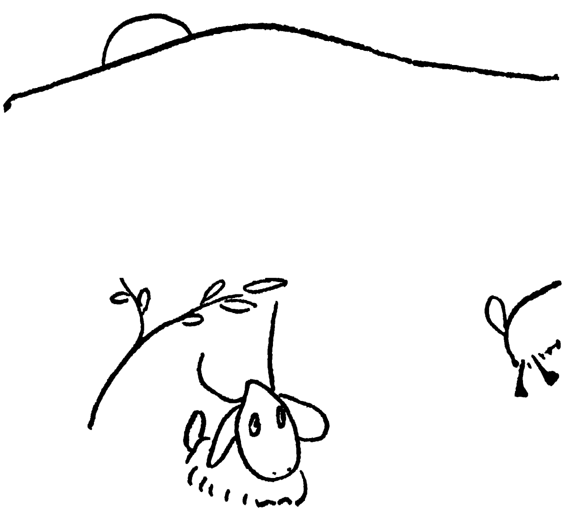


धूप में बहुत दूर तक चढ़ाई पर चलने के बाद नई घास उनको मिल गई, पर वह बहुत अच्छी नहीं थी। बोबक ने थोड़ी-सी घास खाई, पर उसे कुछ ऐसा लगा कि यह घास खाने से उसका जी कुछ बुरा हो गया है।

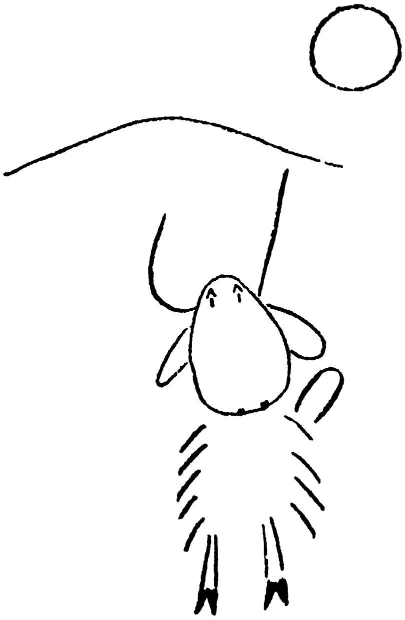
कुछ देर बाद उसे विश्वास हो गया कि उसने दूसरों के साथ यहाँ आकर ठीक नहीं किया।



इसलिए वह बैठ गया और उसने तय कर लिया कि जब तक उसका जी अच्छा नहीं हो जाएगा वह यहाँ से नहीं उठेगा। लेकिन बोबक अभी आराम से बैठा ही था कि अगुआ बकरे ने किसी दूसरी जगह जाने की ठान ली।



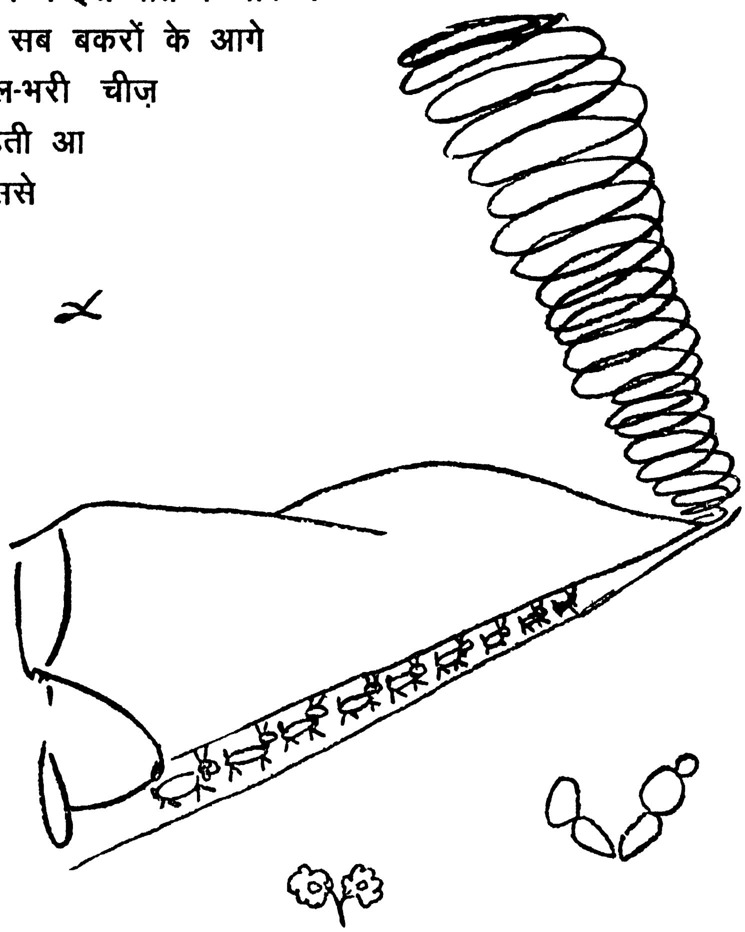
इसलिए वह चल पड़ा और दूसरे बकरे भी उसके साथ चल दिए। सबसे पीछे बोबक था; वह सचमुच वहाँ से जाना नहीं चाहता था।

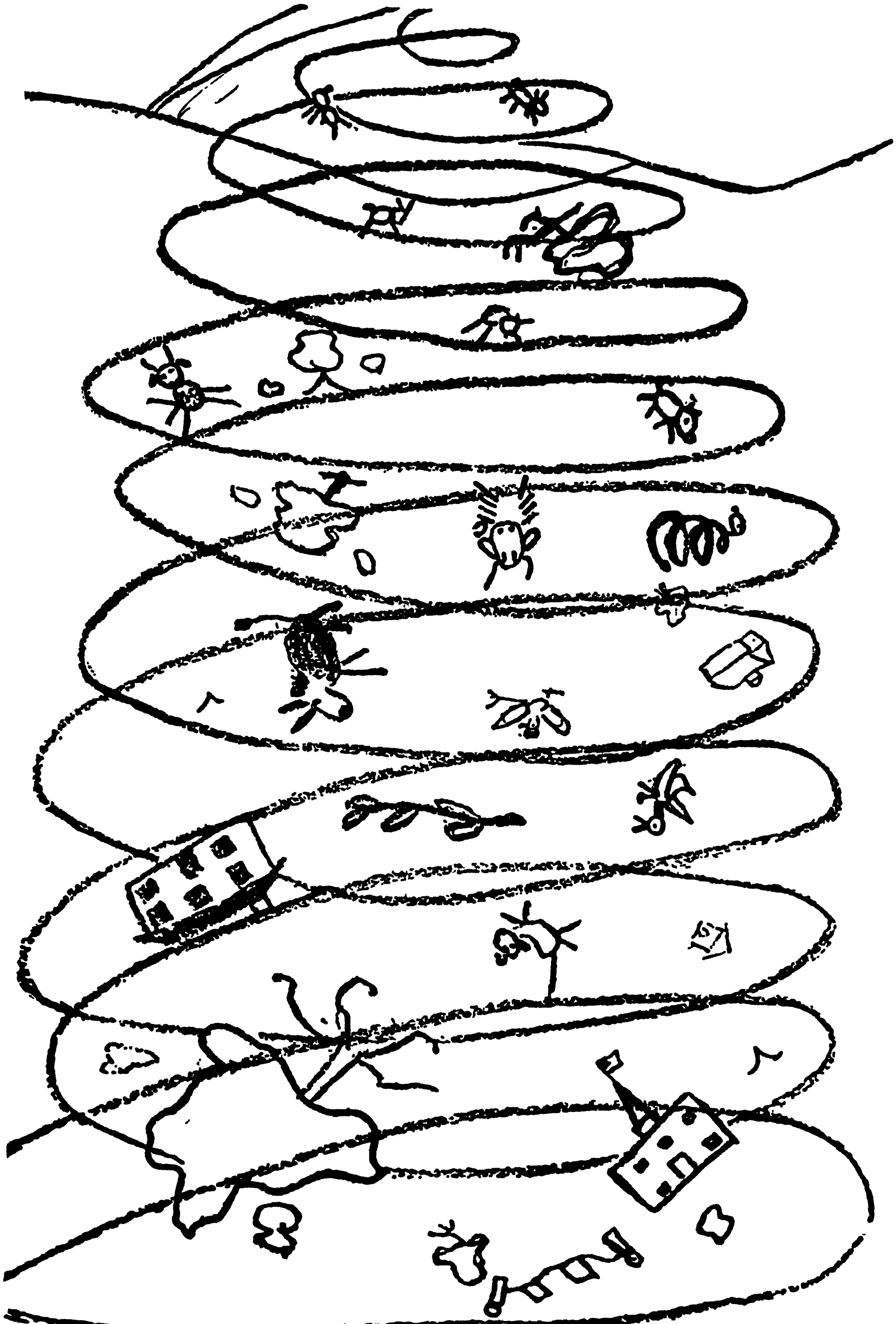


सूरज की तपती हुई धूप में चलते-चलते बोबक सोच रहा था कि वह सबके साथ क्यों आया। वह यह जानने की कोशिश कर रहा था कि चलने से पहले उसने अपने-आप क्यों नहीं सोचा; क्यों वह दूसरे बकरों के पीछे-पीछे चला आया, जो अगुआ बकरे के पीछे-पीछे इसीलिए चले आए थे कि वे हमेशा ही ऐसा करते आए थे।

बोबक की समझ में यह बात नहीं आई।

जिस समय बोबक अपने मन में इस बात के बारे में सोच रहा था उसी समय उसे सब बकरों के आगे कोई बड़ी-सी काली-काली धूल-भरी चीज़ दिखाई दी जो उनकी ओर बढ़ती आ रही थी। बोबक ने आज तक इससे बड़ी कोई चीज़ नहीं देखी थी। वह ज़मीन से उठकर आसमान तक चली गई थी। बोबक को यह चीज़ रत्ती-भर भी अच्छी नहीं लगी। वह बड़ी तेज़ी से उनकी ओर बढ़ती आ रही थी। बोबक का जी चाहा कि अगुआ बकरा सीधे न जाकर कहीं और चला जाए, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। इसलिए वे आगे बढ़ते रहे और वह काली चीज़ उनकी तरफ़ बढ़ती रही। यहाँ तक कि-

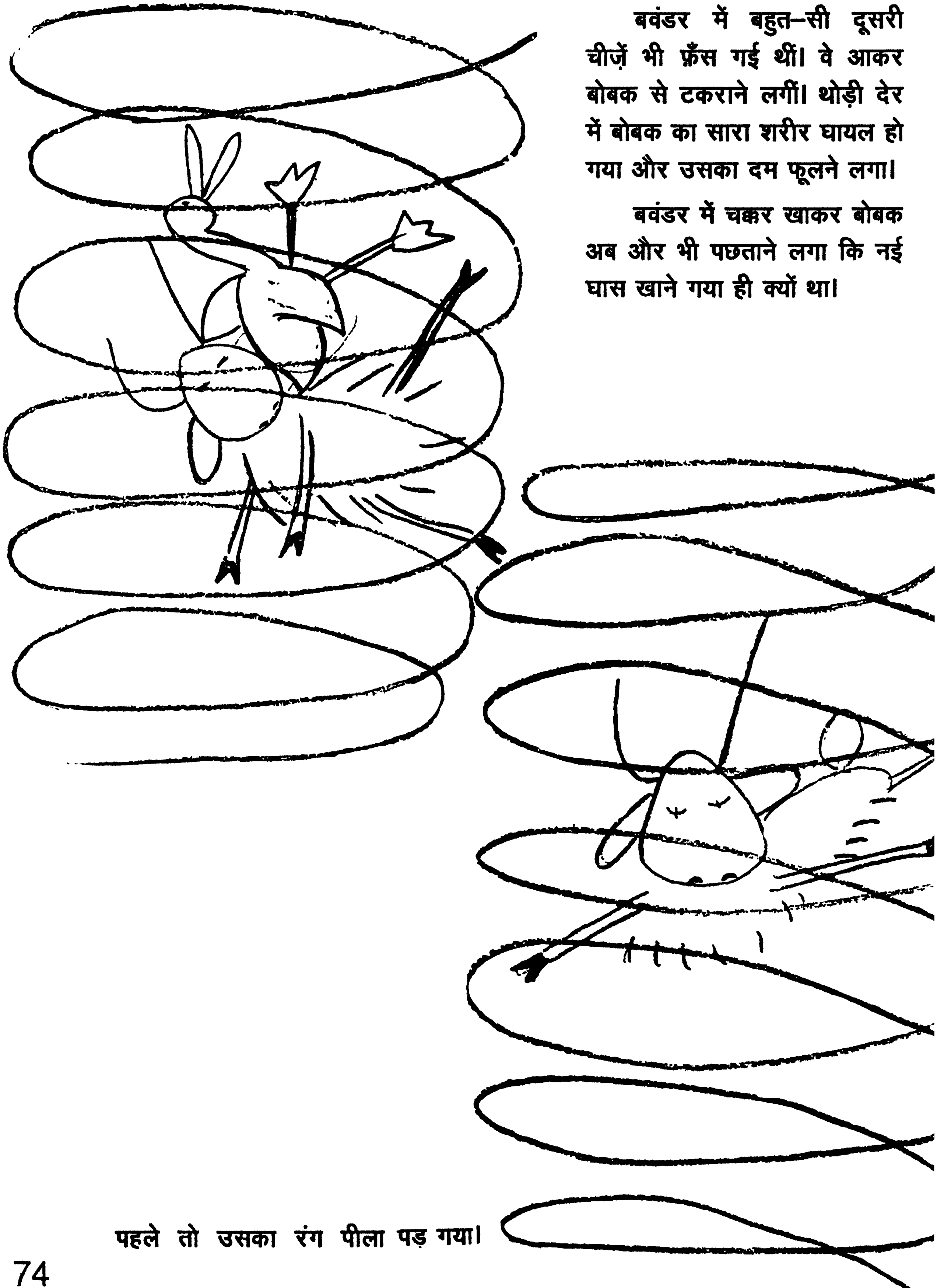




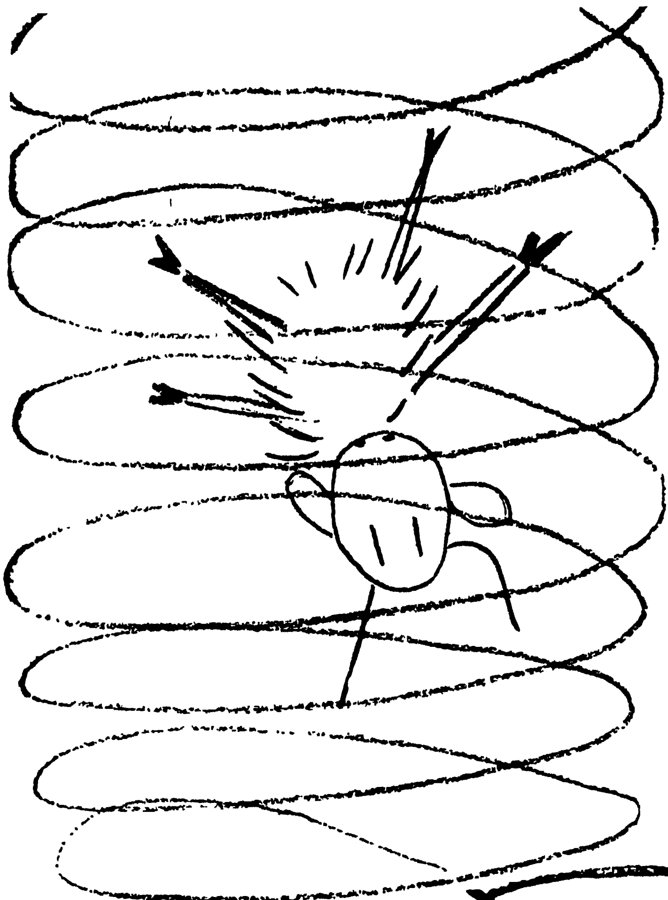
वे बवंडर के बीच जा फँसे। बवंडर या आँधी में फँस जाने में कोई मज़ा नहीं आता। बोबक सचमुच बहुत डर गया। पानी से भरे हुए काले बादल ने उसे ऊपर उछाल दिया। उसे कभी इधर जा पटका कभी उधर और उसे खूब ही कलाबाज़ियाँ खिलाई।

बवंडर में बहुत–सी दूसरी चीज़ें भी फ़ँस गई थीं। वे आकर बोबक से टकराने लगीं। थोड़ी देर में बोबक का सारा शरीर घायल हो गया और उसका दम फूलने लगा।

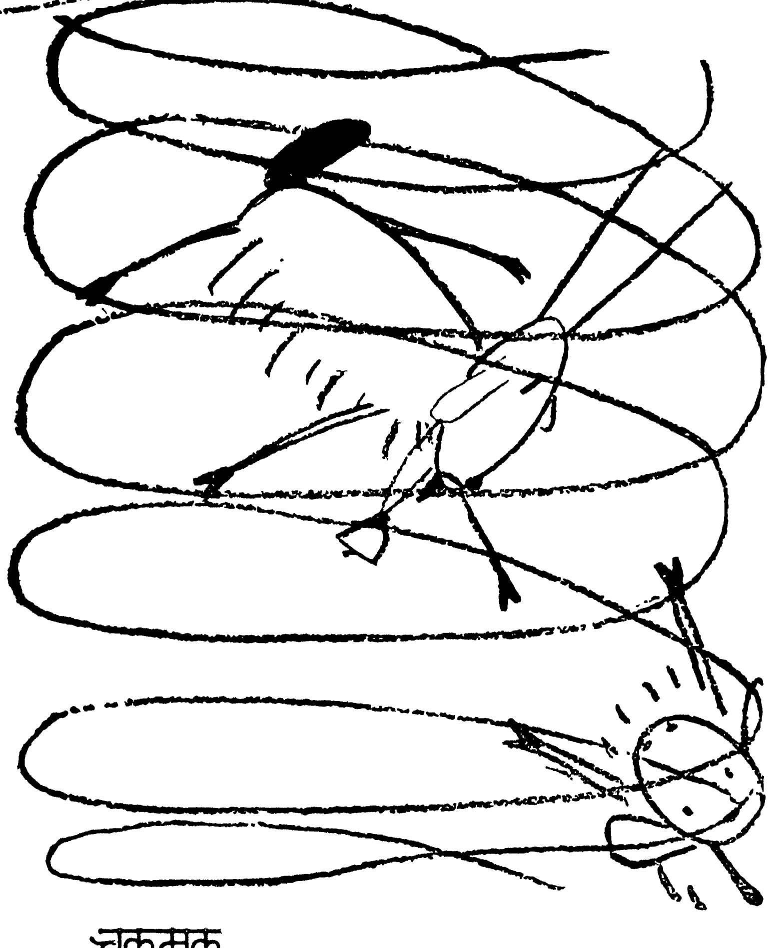
बवंडर में चक्कर खाकर बोबक अब और भी पछताने लगा कि नई घास खाने गया ही क्यों था।



पहले तो उसका रंग पीला पड़ गया।



और फिर उसका रंग हरा हो गया और उसका जी मिचलाने लगा। बोबक को बोबक पर इतना तरस आया जितना अब से पहले कभी नहीं आया था। जब उसकी हालत इतनी बुरी हो गई तो वह सोचने लगा कि अब वह बहुत देर तक ज़िन्दा नहीं रहेगा।

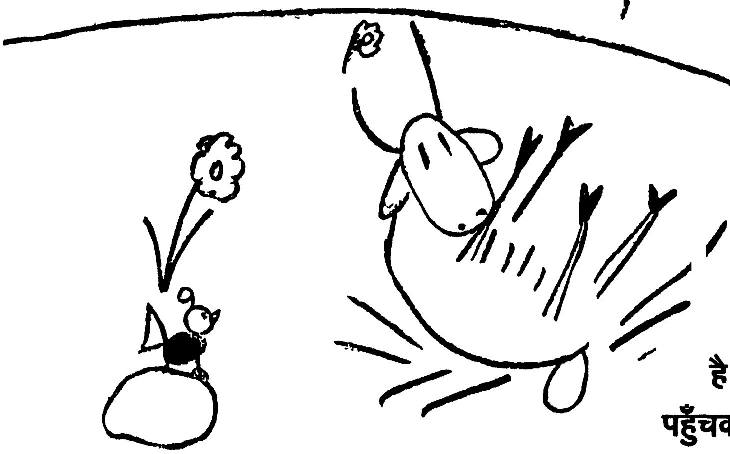


तभी उसने देखा कि बूढ़ा अगुआ बकरा उसके पास से बवंडर में चक्कर खाता हुआ ऊपर उठता जा रहा है। उसकी हालत तो बोबक से भी बुरी थी। इतने में हवा का एक तेज़ झोंका आया और उसने चक्कर देकर बोबक को बवंडर के बाहर फेंक दिया।

वह धम्म से जाकर एक खेत के बीच में गिरा। खेत की मिट्टी नरम थी इसलिए बोबक की हड्डियां तो नहीं टूटीं, फिर भी उसे चोट बहुत लगी।



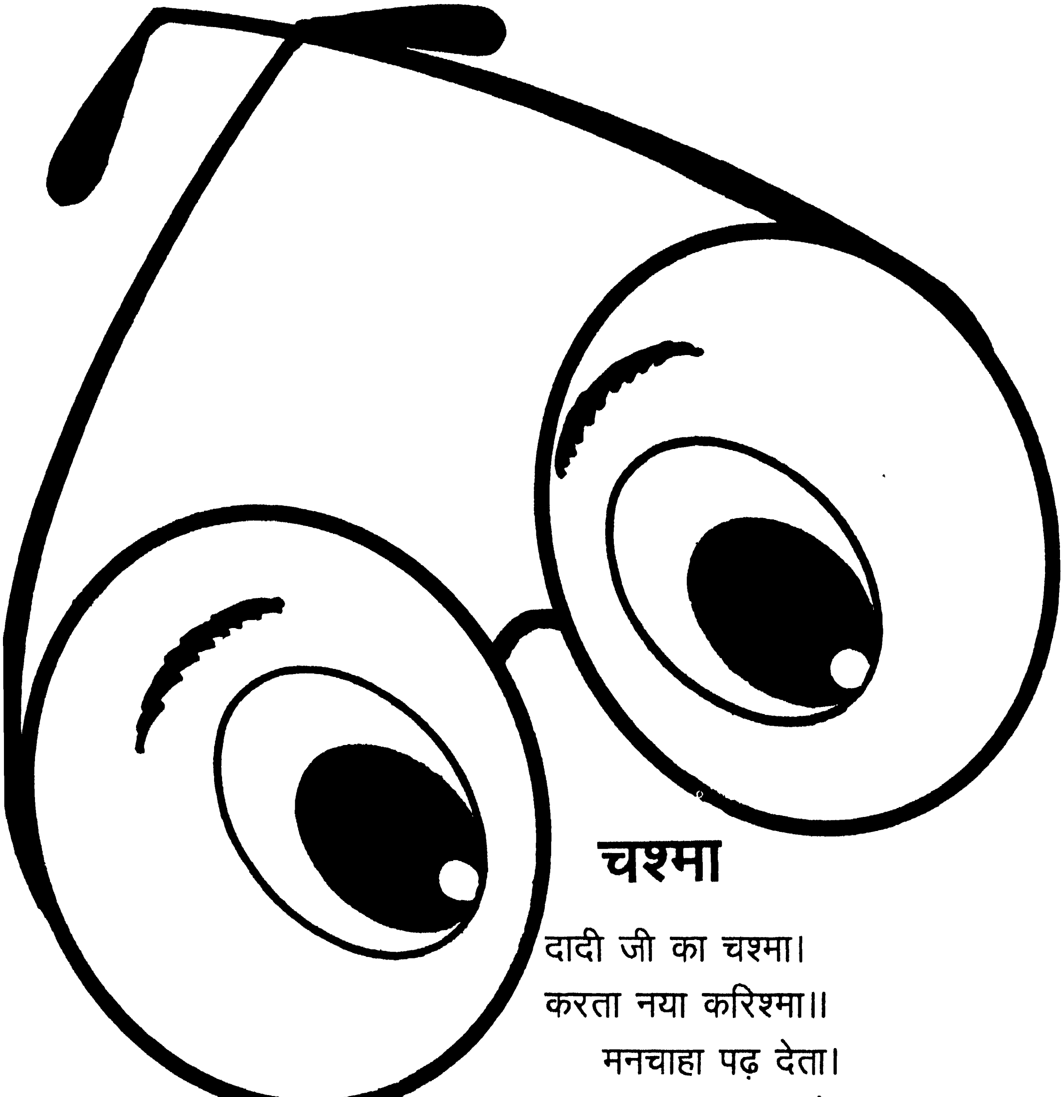
बहुत देर बाद बोबक ने धीरे- धीरे उठकर चारों ओर देखा। उसका सारा शरीर अकड़ गया था और उसको इतनी चोटें लगी थीं कि उसके सारे शरीर में पीड़ा हो रही थी। लेकिन अब उसने एक ऐसी बात सीख ली थी जिसे वह कभी नहीं भूल सकता था।



अब वह कभी एक जगह से दूसरी जगह केवल इसलिए नहीं जाएगा कि दूसरे लोग वहाँ जा रहे हैं। वह पहले अपने-आप पता लगाएगा कि उसे कहाँ जाना है, क्यों जाना है और वहाँ पहुँचकर वह क्या करेगा।

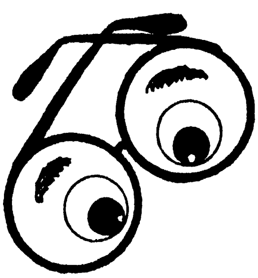


अब बोबक अपने-आप सोचता है और पहले से ज़्यादा खुश रहता है।



चश्मा

दादी जी का चश्मा।
करता नया करिश्मा।।
मनचाहा पढ़ देता।
वरना कुछ गढ़ देता।।
हाथों को मटकाता।
आँखों को भटकाता।।
बालों को उलझाता।
बातों को सुलझाता।।
अक़्सर है खो जाता।
जैसे हो सो जाता।।
लेकिन जब मिल जाता।
आशीषें दिलवाता।।



❑ राष्ट्रबन्धु
चित्र : जया

एक चकमक क्लब की आत्मकथा

जन्मदिन, वो भी अगर सौवाँ हो तो आँखों के सामने झुर्रियों से भरे चेहरे की तस्वीर आ जाती है। पर जिसके बारे में यहाँ बात हो रही है उसके लिए यह कितना सही है, यह तो तुम ही बेहतर बता सकते हो। क्योंकि अब तो वह सबकी हो चली है, उतनी ही मेरी जितनी तेरी, जितनी उसकी। ख़ैर, यह अलग बात है कि अपनी चकमक साल में बारह जन्मदिन मनाती है।

एक राज़ की बात बताऊँ–मेरा मक़सद तो यहाँ, चकमक के बहाने, कुछ अपने बारे में बताना है। पर नहीं, नहीं,–यहाँ नहीं इसके लिए मेरे घर चलना होगा। घबराओ मत, रात से पहले लौट आओगे।

तो आओ चलें चकमक के पन्नों से दूर।

आज सोमवार है और शाम के चार बज रहे हैं, इसलिए मेरे पंचशील नगर, भोपाल वाले घर चलते हैं। जब तक वहाँ पहुँचेंगे तब तक तो वह आबाद हो चुका होगा।

इसका क्या मतलब है?

बस बस, आगे की बातें रास्ते में होंगी, अब निकल भी पडो।

भोपाल के कई अन्य मुहल्लों की तरह ही है यह मुहल्ला, पंचशील नगर। शाम को छोटे बच्चे गली में इधर-उधर गिल्ली-डंडा, कमल-लकड़ी, कंचे, कबड्डी आदि खेलते। बड़ी लड़कियाँ घर के काम में मसरूफ़ हो जातीं, बड़े लड़के झुण्ड बना कर फ़िल्म, गानों, मुहल्ले की बातें करते या बस यूँ ही न्यू मार्केट (भोपाल का एक मुख्य बाज़ार) में आ खड़े होते। यही वे दिन थे जब मैंने यहाँ घर बसाने की बात सोची। एक तरफ झुलसाने वाली मई की धूप थी तो दूसरी तरफ ठण्डी फुहार-सा सुख देती नए घर की तस्वीर।

इससे पहले कि तुम मुझे मकान बनाने वाला ठेकेदार समझ बैठो मैं अपना परिचय दिए देता हूँ, मैं हूँ चकमक क्लब।

चकमक के जन्म से भी पहले कुछ लोगों में मेरे सम्बंध मे बातें होने लगी थीं। कई जोड़ी आँखों ने एक सपना संजोया था एक ऐसे क्लब का, जो गाँव, मुहल्ले, शहर सभी जगह हो। जहाँ बच्चे बैठें, जहाँ पुस्तकें हों, सवाल हों, उन पर चर्चा हो। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हो। कुछ विज्ञान के प्रयोग, कुछ गीत हों। हो गम्भीर पर मज़ेदार भी। कुछ भी थोपा हुआ-सा न हो। यहाँ न शिक्षक की



देवास में चकमक क्लब की एक कार्यशाला में गुरूजी विष्णु चिंचालकर।



मार का डर हो, न ग़लत करने पर शर्मिंदा होने का ख़ौफ़, न ही नहीं आने पर 'नहीं आता' कहने में शर्म जैसी कोई बात।

इतना ही नहीं बच्चों में ख़ुद करके देखने, सीखने, प्रश्नों का हल खोजने की धुन सवार रहे। बच्चों की क्षमताओं को बड़े भी स्वीकारें, समझें और इज़्ज़त दें।

तुम सुन रहे हो। कहीं मैं बहुत तो नहीं बोल गया। देखो पता ही नहीं चला और घर आ गया। यहाँ ज़रा सम्भलकर चलना। रास्ता ऊबड़-खाबड़ है। सिर्फ़ सार्वजनिक नल होने से सुबह-शाम, रास्ते में बरतन-भाण्डों की भीड़ लगी रहती है। यहाँ से पंचशील नगर शुरू होता है। काफ़ी बड़ी बस्ती है। क़रीब चार हज़ार घर होंगे यहाँ। कुछ कच्चे, ज़्यादातर पक्के।

यह रहा मेरा घर। मुहल्ले के बीच में इस मंदिर के अहाते में। वो पेड़ के नीचे जो तीन कमरे दिख रहे हैं, यहाँ दिन के वक़्त स्कूल लगता है। चलो देखें चबूतरे पर बैठे बच्चे आज क्या कर रहे हैं?

अच्छा तो आज फिर काग़ज़ के खिलौने बन रहे हैं। अब तक तो इन के पास तक़रीबन पूरा चिड़ियाघर तैयार हो गया होगा। फिर भी मन है कि भरता नहीं।

क्या कहा?

तुम्हारा भी मन ललचा रहा है। हाँ भई यह चीज़ ही ऐसी है।

इसके अलावा कबाड़ की वस्तुओं से, पत्तियों से, गत्ते से भी चीज़ें बनाई जाती हैं। चित्र, कहानी, विज्ञान के प्रयोग भी कम मज़ेदार नहीं हैं। इन्हें देखने के लिए तो किसी और दिन भी आना होगा।

इस सब के लिए सामान का जुगाड़ सीखने वाले बच्चे ख़ुद ही करते हैं। कुछ सामान सिखाने वाले (स्रोत व्यक्ति) भी लाते हैं। कभी-कभार सेल लेंस, चुम्बक जैसा सामान का इंतज़ाम एकलव्य (वहीं, जहाँ से चकमक निकलती है) से भी कर दिया जाता है।

इन गतिविधियों के अलावा यहाँ खेल भी होते हैं, जी में आया तो गीत भी गा लिए जाते हैं। पुस्तकों के लिए एक बच्चे के यहाँ पुस्तकालय है। सभी के पढ़ लेने पर दो चकमक क्लबों के बीच किताबों की पोटली की अदला-बदली कर दी जाती है।

आओ यहाँ देखो, ये छोटे बच्चे, कभी-कभार अपने बड़े भाई-बहनों के साथ चले आते हैं तो कभी ख़ुद ही आ जाते हैं।

उन्हें मुख्यतः खेल खिलाया जाता है। मूड हुआ तो कविता, कहानी, चुटकले भी सुने, सुनाए जाते हैं। यानी पाँच से सोलह साल तक के बच्चों को अपने मन का कुछ करने का मौका यहाँ मिल जाता है।

आजकल ठण्ड कुछ बढ़ चली है जिससे

अंधेरा जल्द घिर आता है। इसलिए ये बच्चे भी अब जाने की तैयारी में हैं।

सवा छः। अपन भी चलें, कहीं बैठकर चाय पी जाए।

हाँ एक बात और, भई मेरे घर और दूसरे घरों में थोड़ा फ़र्क तो ज़रूर है। पर यह फ़र्क इतना बड़ा भी नहीं कि कुछ भी "एक–सा" न हो। सो जैसे और घरों में रखरखाव पर कुछ खर्च होता है, वैसे ही मेरे घर का ख़र्च बच्चे सम्मिलित रूप से उठाते हैं। यह दो-तीन रुपए प्रति महिने से ज़्यादा नहीं होता। यह पैसा किताबों की मरम्मत, खेल के साधनआदि जुटाने में ख़र्च होता है।

कुछ कहा तुमने?

हॉ बिलकुल ठीक। वक़्त तो बहुत लगा था इस घर की नींव डालने में। यहॉ कई बार आए। इसी स्कूल (मंदिर वाले) की प्राध्यापिका की अनुमति से शनिवार को दो घण्टे बच्चों के साथ गतिविधियॉ कीं। स्कूल में बाल मेला लगाया। इससे बड़े बच्चों के साथ संवाद का रिश्ता बना। बच्चों को क्लब का आइडिया भाया। पंद्रह बच्चों के साथ एक तीन दिवसीय कार्यशाला की, जिसमें गतिविधियॉ सिखाई गईं।

बस फिर क्या था। बच्चो से बच्चे जुड़ते गए और कारवॉ बढ़ता गया। एक शुरूआत हो चुकी थी।

कई कठिनाइयॉ भी आईं। पहले स्कूल के कमरे ही मेरा घर हुआ करते थे। तीन–चार महीने बाद बच्चों को इन कमरों का इस्तेमाल करने की मनाही हो गई। स्कूल की सोसाइटी के मेम्बरान को बच्चों की जो हरकतें बदमाशी लगती वही हमारे लिए शरारत से भरी मस्ती होती। जगह के अभाव में बच्चों का आना बहुत कम हो गया। स्रोत व्यक्तियों ने भी बहुत भाग दौड़ की, फिर भी कोई जगह न मिली तो मंदिर का अहाता ही मेरा घर हो गया।

तुम कुछ गुनगुना रहे हो। ज़रा ज़ोर से कहो तो हम भी सुन लें।

वाह क्या ख़ूब कहा -

कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता,

एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो!

हौसला अफ़ज़ाई का शुक्रिया। वैसे भी अभी तो मीलों मुझको चलना है।

यह कार्यक्रम सिर्फ़ एक-दो जगह सीमित होकर न रह जाए, इसलिए शहर के स्कूलों में समय-समय पर बाल मेला करते हैं। साथ ही अब ये बच्चे अलग-अलग जगहों में जाकर वहाँ के बच्चों के साथ सम्पर्क बढ़ा रहे हैं, जिससे वहाँ भी चकमक क्लब बन सकें।

अब इस ठण्ड में नए घरों की उम्मीद गर्माहट का अहसास दे रही है।

क्या तुम भी अपने गाँव में मुझे आ बसने का न्यौता देना चाहते हो। ज़रूर–ज़रूर। तुम शुरूआत करो। कुछ मुश्किल लगे तो मैं तो हूँ ही।

प्रस्तुति ❑ शशि सबलोक

तुमने यहाँ भोपाल के एक चकमक क्लब की आत्मकथा पढ़ी। यह सच है कि चकमक के पहले ही अंक में ऐसे क्लब की एक कल्पना की गई थी, लेकिन वास्तविक शुरूआत लगभग तीन साल पहले देवास ज़िले में, एकलव्य देवास केन्द्र के माध्यम से हुई। देवास केन्द्र बच्चों के साथ विभिन्न गतिविधियाँ करने में हमेशा से आगे रहा। और इसी क्रम में एक साथ पन्द्रह चकमक क्लब शुरू हुए। ये सभी देवास ज़िले में ही थे। कुछ गाँवों में और कुछ शहरों में। परिणाम उत्साहवर्धनक था। आज देवास, होशंगाबाद एवं भोपाल ज़िलों में लगभग पैंतालिस चकमक क्लब सक्रिय हैं। इनमें से तीस तो केवल देवास ज़िले में ही हैं। इन क्लबों ने बच्चों के बीच किस तरह की नई क्षमताओं को विकसित किया है, किन क्षेत्रों में उनका आत्मविश्वास बढ़ाया है, किन विषयों पर उनकी अभिव्यक्ति को प्रखर बनाया है, और क्या कुछ कर दिखाने की एक सम्भावना भरी राह दिखाई है, यह सब यहाँ बहुत थोड़े में नहीं जाना जा सकता।

फ़िलहाल हमारा उद्देश्य था तुम्हें एक 'बीज' को सौंपना। अब अगर तुम इस 'बीज' को अपने आसपास फलता-फूलता देखना चाहते हो तो अधिक जानकारी के लिए 'चकमक' के पते पर या फिर इस पते पर लिखो -

चकमक क्लब
द्वारा एकलव्य
41/1, राधागंज
देवास (म.प्र.) 455 001

गुल्लू गुड़िया के नन्हें गगन में

❑ कृष्ण कुमार



निर्मल कुमार गोयल, सोलह वर्ष, पटना, बिहार

गुल्लू गुड़िया के नन्हे गगन में
हुई एक दिन घोर लडाई
अब मैं सुनाता हूँ उसकी कहानी
सुनना ध्यान लगाकर भाई

उस दिन शाम को मुन्नी गुडिया
एक तितली के पीछे पडी थी
सुन्दर तितली, प्यारी तितली
सात रंग के पंखो वाली
नानी-फूल की गोद मे बैठी
थी मीठा संगीत सुनाती

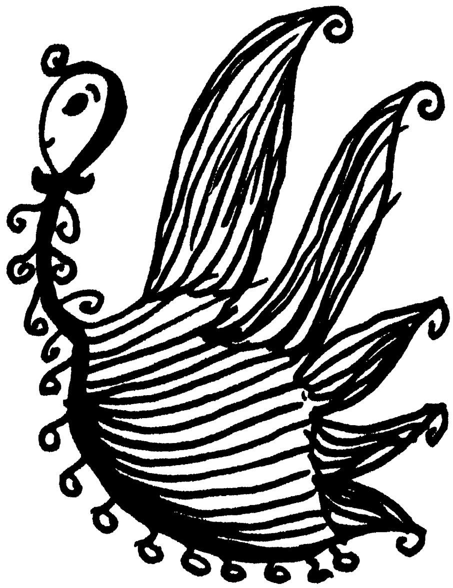
तभी वहाँ पर गुल्लू गुडिया
धीरे-धीरे, चुपके-छिपके
एक हाथ को मुँह पर रखके
और दूसरे की दो प्यारी अंगुलियॉ उठाके
सुन्दर तितली के पंखों की ओर चली वो
धीरे-धीरे धीरे धीरे



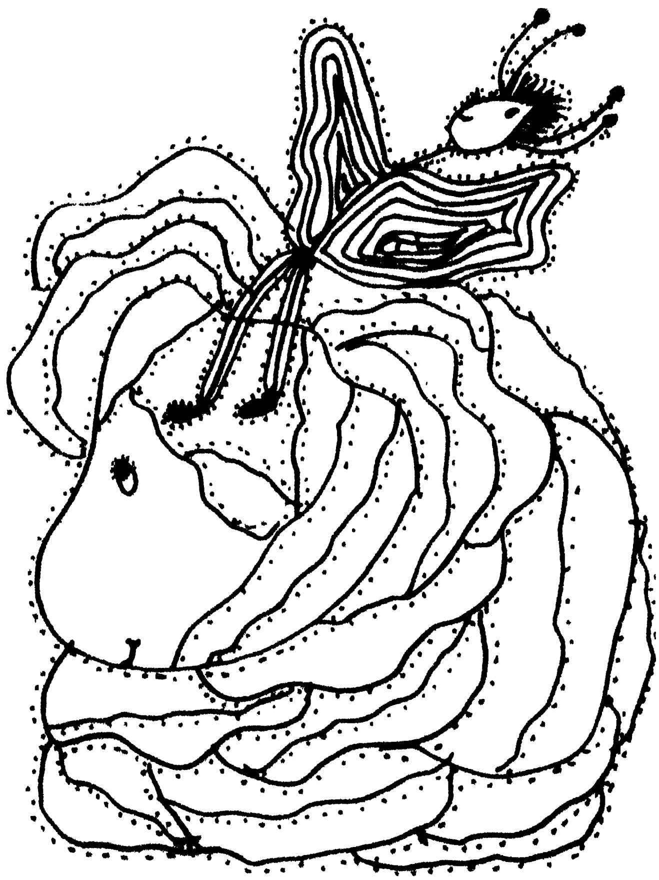
रूराती, दूसरी, दिल्ली

सोच रही थी मन ही मन मे
छुऊँ न छुऊँ, पकडूँ न पकडूँ
तभी बीच में नाना-हवा जी
अपनी मोटी लाठी उठाके
आए नानी-फूल के आगे
फहराया अपनी मूँछों को
और एक लम्बा, तगडा-सा बाल उडाके
छुला दिया गुल्लू गुडिया की
प्यारी नाक से
फिर क्या हुआ ?

आक् छीं ! छींक ! छींक
एक नहीं, दो नहीं, छींक छींक. छींक
गुल्लू की छींक की आवाज़ सुनके
बेचारी तितली एकदम घबराई
नाना-हवा जी जरा मुस्कुराए
नानी-फूल की पंखुडी सिहराई
फिर क्या हुआ, देखो फिर क्या हुआ



बेचारी तितली अपने पंख फैलाके
ऊँचे गगन की ओर उठाके
उडने लगी, उड़ने लगी..
नीचे न देखा, पीछे न देखा
बाएँ न देखा, दाएँ न देखा
नीचे बगीचे के फूलों को छोडा
ऊँचे पहाडों, पेडो को छोड़ा
बेचारी तितली उडती रही
गुल्लू की छींक की आवाज फिर भी
कानों में उसके पडती रही
फिर क्या हुआ, देखो फिर क्या हुआ



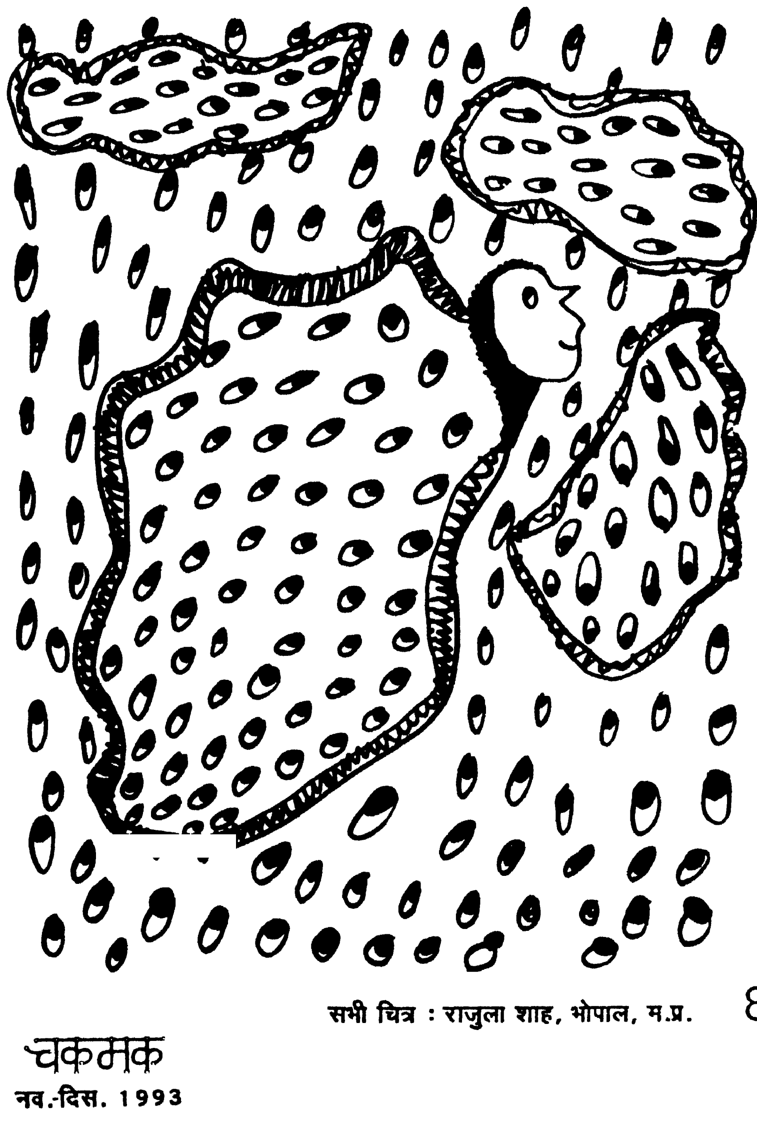
नन्हे गगन के बीच पहुँचकर
थमी ज़रा तितली, देखा चारों ओर
बेचारी के पंखो मे, पैरो मे दर्द था
फिर भी, सब कुछ ठीक था, शान्त था
तो अब थोडा आराम करूँ सोचा तितली ने
फिर क्या हुआ, देखो फिर क्या हुआ .

तितली बेचारी, अपने थके हुए
पंख सिकोड़के धीरे-धीरे
एक मुन्ने-बादल के कान पर जा बैठी
कि शुरू हुई फिर गडबड सारी
तितली बैठी थी एक काले-काले
बकरी-बादल के कानों के ऊपर .
हुई जरा सुर-सुर, फुर-फुर

काले बादल के कानों में
मची गुदगुदी ख़ूब गुदगुदी
गुदगुदी से एकदम घबराकर
उछल पडा और भागा आगे
उसके पीछे . पीछे. पीछे
एक नहीं, दो नहीं, एक हजार बादल
आगे-आगे उछलने लगे .
फिर क्या हुआ, देखो फिर क्या हुआ

काला बादल, बकरी-बादल
इधर-उधर कूदा चिल्लाकर
फिर तो भैया, सब कुछ गडबड
शुरू हो गई भारी भगदड
एक डरा-सा मुर्गा-बादल
सोए हुए एक शेरनी-बादल के
सिर के ऊपर जा कूदा
शेरनी-बादल के सिर पर तो
हुआ-सवार गजब का गुस्सा
गुस्सा, गुस्सा, गुस्सा ही गुस्सा
शेरनी-बादल गुस्से मे गुर्राया, गरजा
गरज-गरजकर आगे आया
हाथी-बादल सोते-सोते नींद से जागा
फिर क्या हुआ, देखो फिर क्या हुआ

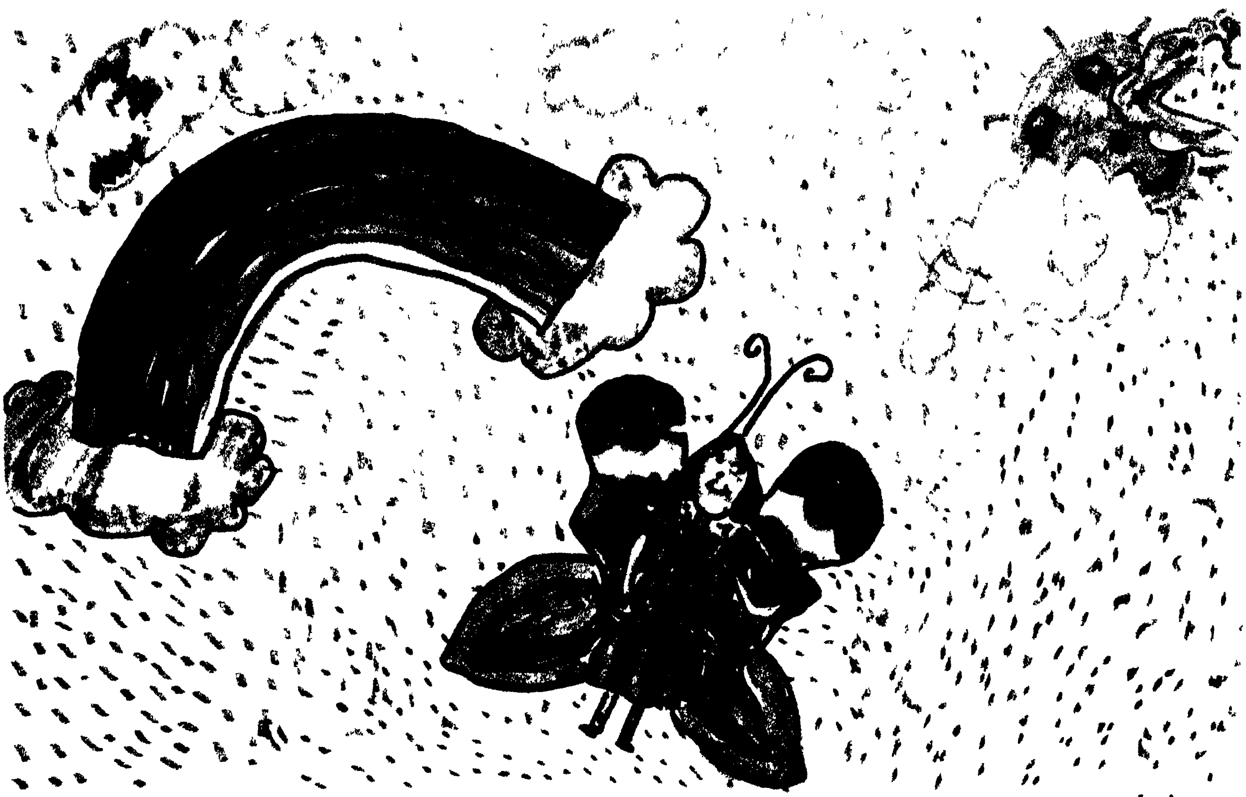
शुरू हो गई घोर लडाई
शेरनी-बादल, हाथी-बादल
काला-बादल, पीला-बादल
मोटा-बादल, छोटा-बादल
आपस में चिल्ला-चिल्लाकर
शोर मचाकर
उलझ-पडे एक-दूसरे से
घोर लडाई लडी गई सारे-दिन भर
लड़ते-लड़ते थक गए बादल
सबको ख़ूब पसीना आया
इतनी सारी बूँदें बरसीं
जैसे बारिश का मौसम आया.



सभी चित्र : राजुला शाह, भोपाल, म.प्र.

बेचारी तितली ने फिर से डरते-डरते
खोल लिया अपने पंखो को
उसके पंखों के सातो रग
फैल गए हर ओर गगन में
और वह बेचारी सुन्दर तितली
बदल गई एक प्यारे से इन्द्रधनुष मे

गुल्लू गुडिया के नन्हे गगन मे
कितने बादल, कितने बादल
एक नहीं, दो नहीं अनगिनत, हा हा
दूर एक कोने में बकरी-बादल
एक नहीं, दो नहीं अनगिनत, हा हा
दूसरे कोने मे शेरनी-बादल
एक नही, दो नहीं अनगिनत, हा हा
बिल्ली-बादल देख के भागे
डरकर नन्हे चूहे-बादल
एक नही, दो नही अनगिनत, हा हा हा



ऋचा, ग्यारह वर्ष, भोपाल, म

बन्दर राजा

❑ अमृतराय



ऐसा मोटा-ताज़ा, पहलवान बन्दर तुमने भी शायद ही देखा हो। बाप रे बाप, वो बन्दर नहीं, अच्छा-ख़ासा खाया-पिया हाथी का बच्चा नज़र आता था। ऐसा रोबीला चेहरा था उसका कि उसे देखकर ही डर मालूम होता था। खीस निकालकर जिधर दौड़ पड़ता, हम सब बच्चों की घिग्घी बँध जाती। जो ज़्यादा छोटे-छोटे थे वो तो अपनी माँओं से जा चिपकते, बाक़ी सब भाग निकलते जिधर जिसका सींग समाया।

इधर दस-बारह दिनों से साले ने हमारे गाँव में बड़ा उत्पात मचा रखा था। कोई नहीं जानता कि पहले वो कहाँ था फिर यहाँ कैसे आ गया, क्यों आ गया। जो भी बात हो पर उसका आना था कि समझो क़यामत आ गई। ऐसी मनमानी करता था कि जैसे वही हमारे गाँव का राजा हो। कभी किसी के घर से उसका चश्मा लेकर भाग जाता और मुँडेर पर जा बैठता। फिर वो बेचारा आदमी, जो अपने चश्मे के बिना यों ही अंधा हो रहा होता, आँगन में खड़े होकर उससे बड़ी-बड़ी चिरौरी-बिनती करता, फिर जैसी मर्ज़ी बन्दर राजा की। कभी उन्हें दया आ जाती तो चश्मा वहीं छोड़कर हट जाते, कभी उन्हें धुन समाती तो चश्मा वहीं से टपका देते–अब आप पर है, आप उसे लोक लें तो क्या कहना, और जो न लोक पाएँ तो आपका चश्मा चकनाचूर, अब शहर जाकर दूसरा बनवाइए, दस रुपए की चोट हो गई।



बन्दरराम का दूसरा प्रिय खेल था, अलगनी पर सूखती हुई साड़ियों को उठाकर भाग जाना और फिर जब घर-घर के

नारी समाज में शोर मचता–पकड़ो पकड़ो, बन्दरवा साड़ी लेकर भाग गया –तो उस पाजी बन्दरवा को बड़ा मज़ा आता और वो उन सबको सताने के लिए उन्हें और भी दिखा-दिखाकर साड़ी की चिंदी-चिंदी कर डालता।



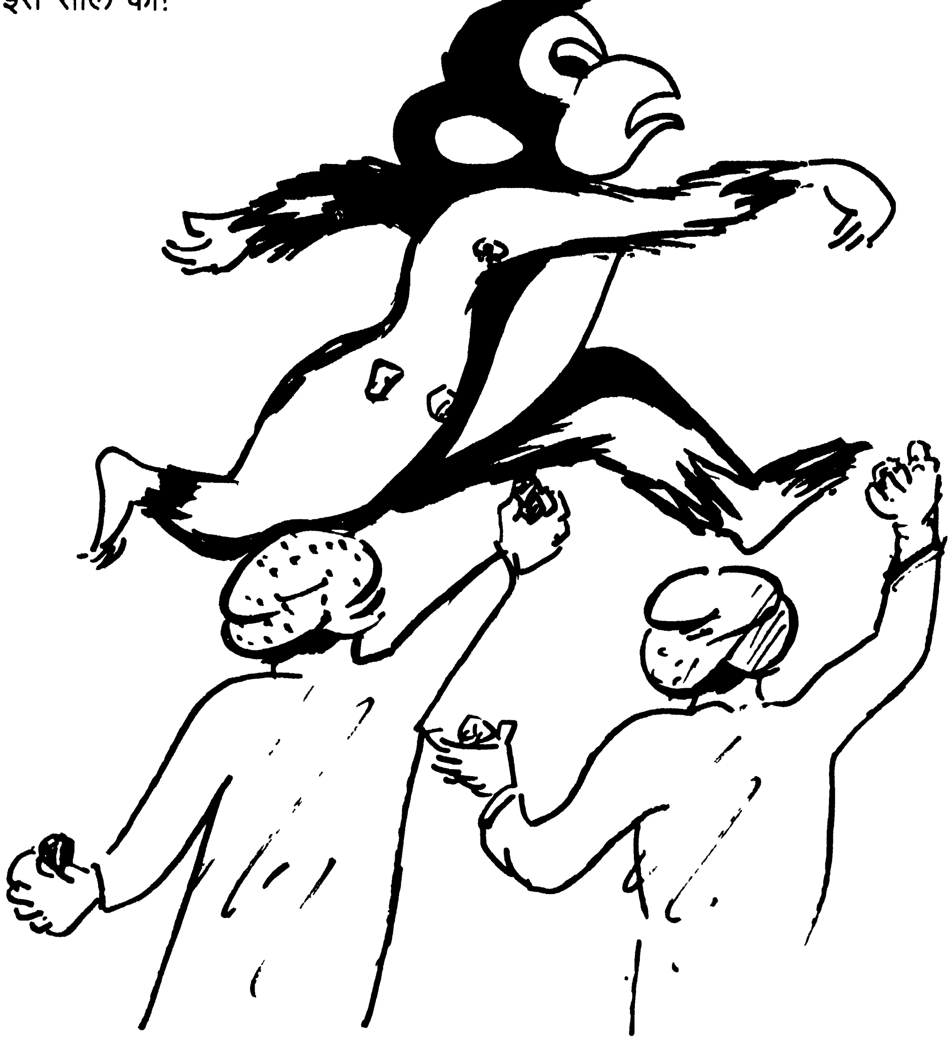
उनका खाना हर रोज़ एक न एक घर में ही होता। किसी से पूछने-जाँचने की ज़रूरत न थी, वो ख़ुद ही अपने को निमंत्रित कर लेते, राजा ही ठहरे। हनुमान जी के प्रतीक को खाना खिलाना किसी को खलता भी न था। पर खिलंडरे बन्दर राजा जी को ही इस तरह खाना कुछ अच्छा न लगता, सो वो आए दिन मौक़ा देखकर किसी की रसोई में घुस जाते, सब तॅहड़-बॅहड़ कर देते, फिर कहीं बटलोई भर दाल ही पी गए, कहीं सब भात ही भात चट कर डाला!

फिर उन्हें घुड़सवारी में बहुत मज़ा आने लगा। अब घोड़े तो अपने गॉव में कहीं थे नहीं, हॉ कुत्ते थे दर्ज़नों, सब एक से एक मरियल, मिरगुल्ले। लिहाज़ा हमारे ये बन्दर राजा साहेब उन्हीं से अपना शौक़ पूरा करते। जिस शान से वो उनकी सवारी गॉठते और वो बेचारे आधी जान के कुत्ते राजा साहब को अपनी पीठ पर ढोते, भले उनकी कमर टूटी जा रही हो –ढोते न तो करते भी क्या बेचारे, चाबुक के बदले वो ज़ोर का थप्पड़ पड़ता उनके मुँह पर कि ऑखों के आगे अंधेरा छा जाता–वो एक अनोखा ही दृश्य था।



धीरे-धीरे बन्दर राजा को बड़ा घमण्ड हो गया अपनी पहलवानी पर, अपनी चालाकी पर, अपनी फुर्ती पर, और जैसा कहा भी है, घमण्डी का सिर नीचा। हुआ क्या कि एक

दिन वो मौक़ा पाकर एक धनी किसान की बखार में घुस गए–जहाँ नई फ़सल का सब अनाज अभी दो रोज़ हुए कटकर आया रखा था–और बड़ा सत्यानास किया उसका। अब पानी सर से निकल गया -- अब तो ये सीधे हमीं लोगों पर हाथ साफ़ करने लगा, अब तो कुछ न कुछ करना ही होगा इस साले का!



फिर क्या है, गाँव वालों को तो तमाशा चाहिए, उन्होंने उसको सब तरफ़ से घेरकर खदेड़ा तो वो चढ़ गया अपने उसी बरगद के पेड़ पर जहाँ उसका घर था। लोगों ने तब ज़ोर से ढेलेबाज़ी शुरू की। एक से एक निशानची गाँव के वो सब लौंडे-लपाड़ी। वानर-राज एक डाल से दूसरी डाल भागते फिरे और नीचे से लोगों के पथराव की अचूक गोलाबारी समान रूप से होती रही तो आख़िर बेचारे वानर-राज घबराकर नीचे की एक डाल पर से कूदे और बिजली की-सी तेज़ी से गाँव के बाहर दूसरे किसी गाँव की ओर भाग गए।

उनकी अन्धेरगर्दी से मुक्ति मिली इसकी खुशी तो थी लेकिन रोज़ के उनके वो नए-नए सर्कस-तमाशे अब नहीं मिलेंगे, इसका दुख भी कुछ कम न था।

❑❑❑

सभी चित्र : आशा शर्मा

शरारत

सुबह उठा तो मैंने कांच में देखा, मेरा मुँह काला-काला था। मैंने मेरी बड़ी मम्मी से कहा, "मम्मी आशीष मामा ने मेरा मुँह काला-काला कर दिया।"

आशीष मामा नहाकर किताब पढ़ रहे थे। मम्मी ने आशीष मामा से कहा, "इसका मुँह काला क्यों किया?"

तब आशीष मामा हँस दिए। बाद में मैं नहाने बैठा, नहाकर बाथरूम से बाहर निकला, पर फिर भी मेरा मुँह काला था। फिर गुड्डी मौसी ने कहा, "बाथरूम में चल रंग निकाल दूँ।"

फिर भी वो निकला नहीं। मैंने कपड़े पहने फिर चाय पी। आठ बजे मनीष भाई ने कहा, "तेरा मुँह काला क्यूँ है?"

मैंने कहा, "रात में मैं सो गया था तब मामा ने मुँह काला कर दिया।"

मनीष भाई चले गए। आशीष मामा ने कहा, "पावडर लगा ले मिट जाएगा।"

मैंने पावडर लगा लिया। थोड़ी देर बाद वे सो गए। तब मैंने चेतना से कहा, "चल अपन मामा को लाल-लाल करें।"

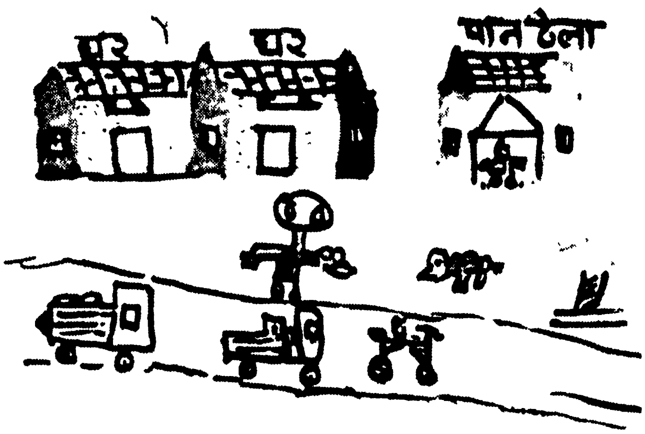
चेतना ने 'हॉ' कहा। फिर हम नीचे गए। नीचे जाकर एक पत्थर पर एक ईंट घिसी। फिर हमने बची हुई ईंट फैंक दी। हम ऊपर आए और आशीष मामा के गाल पर चपोड़ दिया। जब मैंने उन्हें रंग लगाया तब वे जाग रहे थे। उठने के बाद वे बोले, "मुझे मालूम था तुमने ईंट का चूरा लगाया है।"

वे बाथरूम में गए और मुँह धो लिया।

❑ विशाल, पादरा, वड़ोदरा, गुजरात

(यह रचना मूल रूप से गुजराती में लिखी गई है। मूल रचना और इसका हिन्दी अनुवाद खरगोन से आशीष दलाल ने भेजा है।)

साइकिल की मार



मोहम्मद मुस्तफा, चांपा, म.प्र.

मैं जब भी साइकिल चलाना सीखना चाहता तब पापा जी हमेशा मना कर देते थे। परन्तु मेरा उतरा हुआ मुँह देखकर वे मौन स्वीकृति दे देते थे। तब मैंने अनेक बार गिरते-पड़ते आख़िरकार साइकिल चलाना सीख ही लिया।

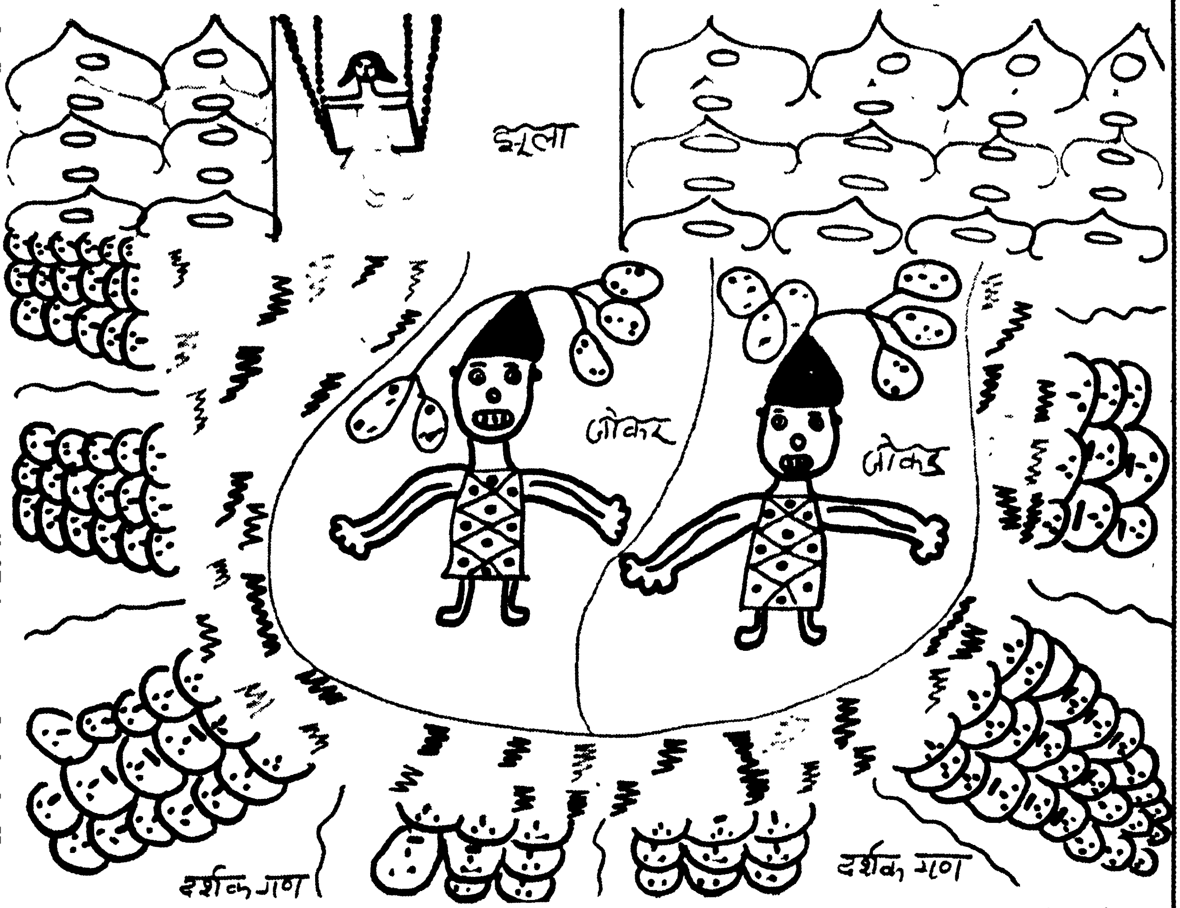
जब भी मेरे हाथ में साइकिल आती तो मैं हवा से बातें करने लगता था। फिर पापा जी समझाते, "बेटा, तेज़ साइकिल मत भगाया कर। सड़क पर ट्रक, बस, स्कूटर गुज़रते रहते हैं।"

मेरे मन में डर ज़रूर रहता था। लेकिन मैं चुप रह जाता था।

एक दिन मैं सड़क पर साइकिल चलाते समय इतना बुरा गिरा कि मेरे हाथ-पैर, घुटने फूट गए। खून बहने लगा। मैंने घर आकर साइकिल चुपचाप टिका दी। मम्मी मुझे देखकर रो पड़ी थी। मैंने मार के डर से पापा जी को बताया कि मैं पत्थर पर से गिर पड़ा। तब पापा जी गुस्से से बोले, "एक तो साइकिल से गिरा है। झूठ बोलता है।"

उन्होंने उस दिन ख़ूब मारा।

❑ विवेक कुमार कहार, ग्यारह वर्ष, सुखतवा, (होशंगाबाद) म.प्र.



पालकी कोहली, सातवीं, पिथौरागढ़

सरकस

सरकस आया सरकस आया,
ढेरों तमाशे साथ लाया।
कोयल गाती है गाना,
बन्दर सिखाए बजाना।
शेरों की दहाड़ देखिए,
रीछों की पछाड़ देखिए।
कुत्तों के करतब निराले,
खरगोश दौड़ें हो मतवाले।
दर्शकों को हँसाते हैं बीच से होकर,
कुछ छोटे-बड़े मसखरे जोकर।
अन्त में हाथी का देखिए डिस्को,
पैसे हुए वसूल अब अपने घर खिसको।

❑ बसन्त तिवारी, पन्द्रह वर्ष, भोपाल, म.प्र.

संजय जामुन के पेड़ से गिरा



जसवन्तसिंह, आठवीं

एक दिन मैं और संजय, हम दोनों गाँव से जंगल की ओर जा रहे थे। तो मैंने संजय से कहा कि चलो आज अपन जामुन खाने चलें। तो संजय ने कहा कि चलो। और हम दोनों वहां जामुन के पास पहुंचे। और उसके पास गए तो मैंने कहा कि चलो संजय चढ़ें। और हंम दोनों चढ़ गए।

उसके बाद संजय और मैं, हम दोनों अलग-अलग डँगाल पर गए। संजय जिस डँगाल पर गया था उस पर अधिक जामुन थे। और मैं जिस पर गया था उस पर बहुत कम थे। लेकिन मैं संजय की डंगाल पर नहीं जा सकता था। जो मैं वहां उस डँगाल पर चला जाता तो वह हम दोनों के वज़न से टूटकर ज़मीन पर गिर पड़ती। इसलिए मैंने संजय से कहा कि संजय आप थोड़े जामुन मुझे दे दो। इतना कहा कि संजय मुझे जामुन देने आया और उसने मेरी ओर हाथ बढ़ाया और इधर उसके हाथ में से डँगाल छूटी और संजय गिर पड़ा।

❑ विनोद कुमार वर्मा, पन्द्रह वर्ष,
जमोनिया (देवास) म.प्र.

वाद-विवाद प्रतियोगिता


राकेश माली, तीसरी, देहरिया साहू, देवास, म.प्र.

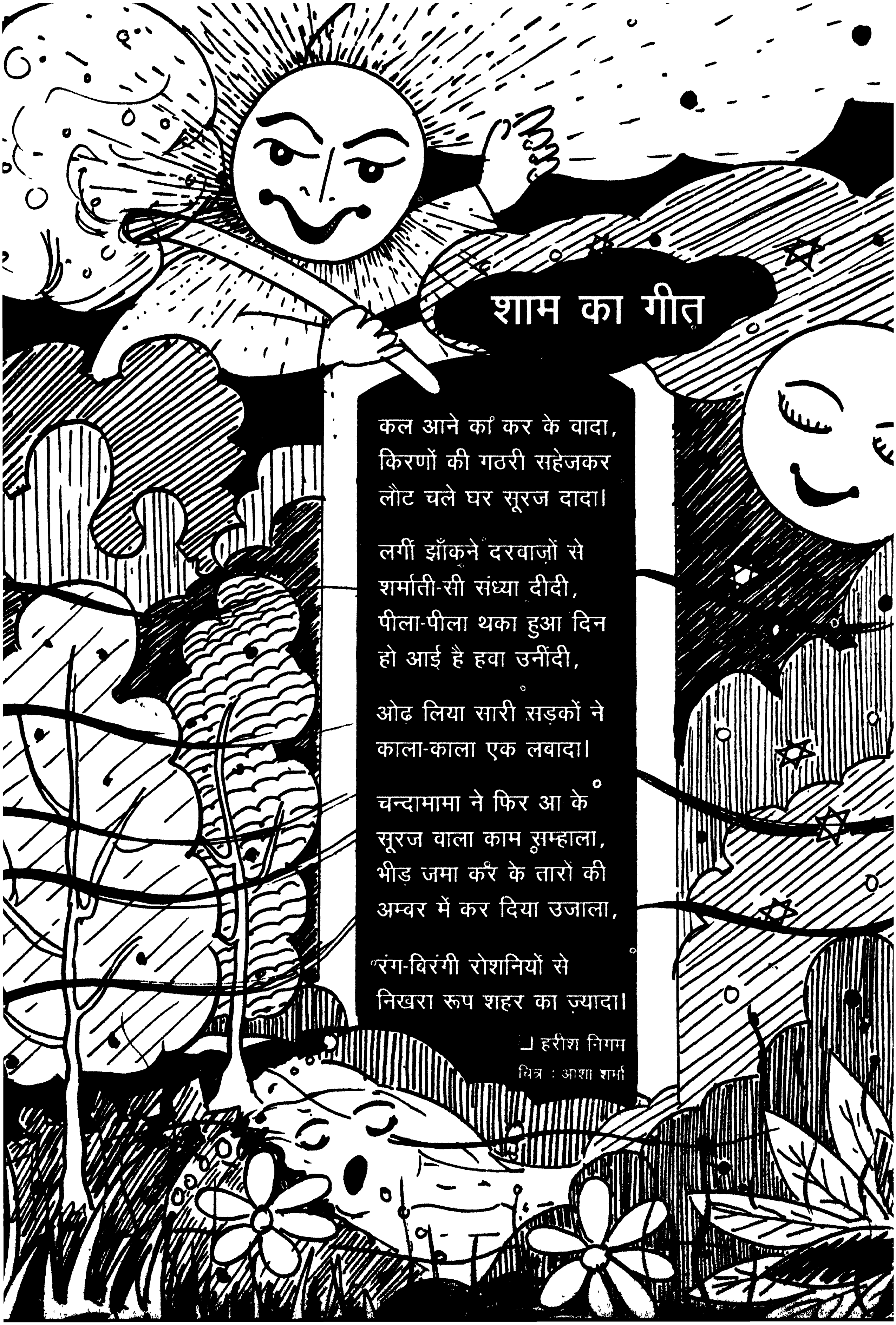
छुट्टियों के बाद मैं स्कूल गई ही थी कि हमारी हिन्दी की अध्यापिका ने बताया कि हमारी कक्षा में से हिन्दी की वाद-विवाद प्रतियोगिता के लिए बच्चे चुने जाएँगे। मेरी बहुत इच्छा हुई कि मैं भी वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लूँ। विषय था कि 'दूरदर्शन बच्चों की उन्नति में सहायक है या नहीं'। मैंने और मेरे तीन साथियों ने पक्ष में भाग लिया और मेरे अन्य चार साथियों ने विपक्ष में।

मैंने इस प्रतियोगिता के लिए लगभग एक हफ़्ता, बार-बार लिखा और बहुत अच्छी तरह बोलने की कोशिश की। इस प्रतियोगिता के लिए बाहर से जज भी बुलाए गए थे। हमारी प्रतियोगिता शुरू होने से पहले मैंने ख़ूब पानी पिया।

सबने बहुत अच्छा बोला। मैंने भी अच्छा बोला। पूरे विद्यालय ने मेरी तारीफ़ की। मुझे बहुत खुशी हुई। एक बात का दुख भी था कि मुझे कोई इनाम न मिला। इस बात पर गुस्सा भी आ रहा था कि एक विपक्षी जो कि बीच में एक-दो मिनट को रुका भी था, उसे द्वितीय इनाम दिया गया। मेरे साथी तो कह रहे थे कि अगली बार से हम भी भूलेंगे और हमें भी इनाम मिल जाएगा। मेरे दो और साथी थे जिन्होंने बहुत अच्छा बोला था परन्तु इनाम न मिल सका। उन्होंने तो मंच पर ही रोना शुरू कर दिया। हमारी अध्यापिका ने मंच पर आकर उन्हें पुचकारा। फिर हम कक्षा में चले गए।

कक्षा में उन्हें देखकर मुझे भी रोना आ गया। मैं ख़ूब रोई। मेरे पापा और मेरे साथियों ने मुझे समझाया कि भाग लेना ही बहुत बड़ी बात होती है। हार-जीत का तो सवाल ही नहीं होना चाहिए। कुछ देर बाद मेरे पापा ने मुझे चॉकलेट दिलाई। मैंने वह अपने साथियों के साथ मिलकर खाई और खुशी-खुशी अपने घर चली गई।

❑ अदिति अग्रवाल, दस वर्ष, गाज़ियाबाद, उ.प्र.



शाम का गीत

कल आने का कर के वादा,
किरणों की गठरी सहेजकर
लौट चले घर सूरज दादा।

लगीं झाँकने दरवाज़ों से
शर्माती-सी संध्या दीदी,
पीला-पीला थका हुआ दिन
हो आई है हवा उनींदी,

ओढ़ लिया सारी सड़कों ने
काला-काला एक लबादा।

चन्दामामा ने फिर आ के
सूरज वाला काम सम्हाला,
भीड़ जमा कर के तारों की
अम्बर में कर दिया उजाला,

रंग-बिरंगी रोशनियों से
निखरा रूप शहर का ज़्यादा।

□ हरीश निगम
चित्र : आशा शर्मा

डायनोसौर

❑ सुशील जोशी

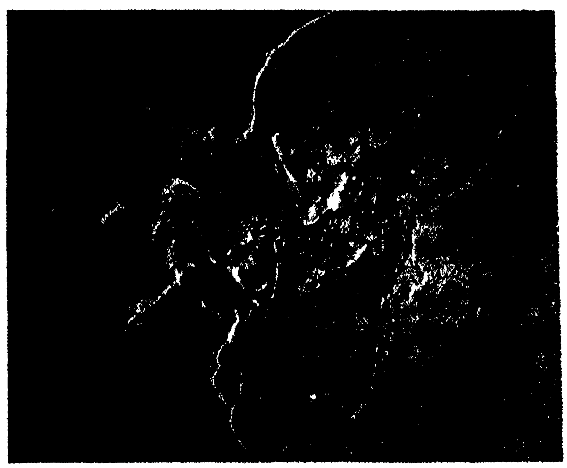


***एक कार्टून :** एक पिता अपने बच्चे को एक डायनोसौर पार्क में डायनोसौर दिखा रहा है। लेकिन बच्चा शायद उन्हें देखना नहीं चाहता है।*

डायनोसौर का नाम सुनते ही अजीब-सा लगता है न? ऐसे बड़े-बड़े जीव, उन्हें जीव कहना भी अजीब लगता है। आजकल डायनोसौर फ़ैशन में हैं। ख़ासकर 'ज़्यूरासिक पार्क' नामक फ़िल्म बनने के बाद तो ऐसा लगता है कि डायनोसौर अमिताभ बच्चन और श्रीदेवी से भी बड़े सुपरस्टार हो गए हैं। मगर हम जानते क्या हैं इन सुपरस्टार के बारे में?

सबसे पहले तो हमें यह याद रखना चाहिए कि डायनोसौर और उनके कामकाज, उनकी करतूतों का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। यानी कोई ऐसा 'व्यक्ति' नहीं है जो हमें दादी-नानी की तरह बैठकर पूरी कहानी सुना दे। इसलिए डायनोसौर के बारे में जानने के लिए हमें ऐसे सबूतों पर निर्भर रहना पड़ता है, जो अपने आप कुछ नहीं कहते। उन्हें देखकर हमें उनका अर्थ समझना पड़ता है। इसका मतलब यह हुआ कि अलग-अलग लोग इनका अर्थ अलग-अलग भी निकाल सकते हैं। और यही होता भी है।

इन सबूतों में सबसे बड़ा सबूत है चट्टानें। 'गीत गाया पत्थरों ने' कवि की कल्पना हो सकती है मगर पत्थर सचमुच गाते नहीं। इन चट्टानों के बनते समय कई बार इनमें जीव दफ़न हो जाते हैं। चट्टान बनती जाती है और ये जीव अन्दर दबे रहते हैं। कई बार ऐसा होता है कि चट्टानों की अन्दरूनी सतह पर इन जीवों की छाप छूट जाती हैं। इन्हें फ़ॉसिल या जीवाश्म कहते हैं। जब बाद में खुदाई की जाती है, तो ये छाप मिल जाती हैं। इनके आधार पर उन जीवों के बारे में समझने की कोशिश होती



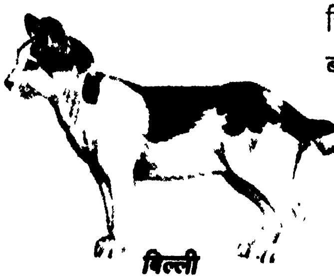
***आर्कियोप्टेरिक्स** नामक एक पक्षी का जीवाश्म (फ़ॉसिल)।*

है, जो शायद आज धरती पर न हों।

डायनोसौर की ऐसी सबसे पहली छाप सन् 1820 के आसपास इंग्लैण्ड में देखी गई। यह तो तुरन्त समझ में आ गया कि यह छाप किसी बहुत बड़े जीव की है। मगर बहुत बड़े कहने का मतलब क्या है? हमारे लिए तो बड़ा जीव मतलब हाथी होता है। मगर यह जीव हाथी से कहीं बड़ा था। धीरे-धीरे जानकारी मिलने पर पता लगता गया कि ये 'बड़े-बड़े जीव' पूरी धरती पर रहते थे। कितने बड़े थे ये?

ज़रा कल्पना करो एक लाख किलोग्राम के एक जीव की जो 50 फुट लम्बा हो। आज जो हाथी नज़र आता है उसका वज़न क़रीब 5000 किलोग्राम होता है। वैज्ञानिकों ने तत्काल इस विशाल जीव को डायनोसौर (यानी विशाल छिपकली) का नाम दिया। जो बात हमें डायनोसौर की तरफ आकर्षित करती है, वह यही बड़ा आकार है। प्राय: यही माना जाता है और प्रचारित किया जाता है कि डायनोसौर बड़े-बड़े थे। उनसे डर लगने लगता है। इसी डर और आकर्षण की वजह से मैंने भी इनके बारे में पढ़ना, अपने आपको शिक्षित करना शुरू किया। मन में कई सवाल थे। धीरे-धीरे पता चला कि ऐसे ही सवाल वैज्ञानिकों ने भी पूछे हैं और जवाब पाने के लिए बहुत पापड़ बेले हैं।

सबसे पहली बात मेरी समझ में यह आई कि सारे डायनोसौर बड़े-बड़े नहीं थे। और मज़ेदार बात यह है कि 5-10 किलोग्राम की बिल्ली के साइज़ वाले डायनोसौर भी मौजूद थे (यहां दिए चित्र देखो)। यदि डायनोसौर इसी साइज़ के होते तो शायद कोई चिन्ता न करता। क्या हम कभी चिन्ता करते हैं कि कितने छोटे-छोटे जीव कब ख़त्म हो गए या आज भी ख़त्म हो रहे हैं। वास्तव में 10,25,30 टन के इन जीवों ने इतना आकर्षण पैदा किया कि इसकी वजह से जीव विज्ञान, जीवाश्म विज्ञान, विकासवाद, भौगोलिक घटनाओं आदि के क्षेत्र में बहुतेरी नई-नई बातें सामने आईं।

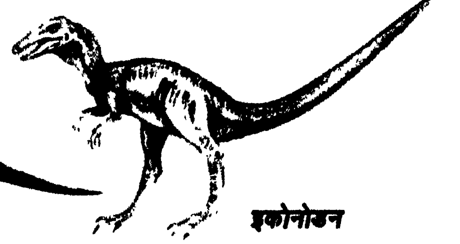

बिल्ली

आख़िर ये महाजीव कब हुए थे और कब तक रहे इस धरती पर? इस बात को समझने के लिए वैज्ञानिक यह पता लगाते हैं कि जिस चट्टान में फ़ॉसिल मिला है, वह कितनी पुरानी है। इससे पता चलता है कि कम से कम उस समय वह जीव धरती पर मौजूद रहा होगा। इस विधि से वैज्ञानिकों ने बताया कि डायनोसौर इस धरती पर आज से बीस करोड़ साल पहले उत्पन्न हुए थे और क़रीब सात करोड़ साल पूर्व तक रहे। यानी कुल तेरह करोड़ वर्षों तक ये धरती पर रहे।

10 टन, 20 टन और 100 टन वज़न के जीव की बात सुनकर सबसे पहले मेरे दिमाग़ में सवाल यह आया कि ये खाते क्या होंगे। और कितना खाते होंगे। अपना हाथी क़रीब 5 टन वज़न का होता है। उसे दिन में 250 किलोग्राम खाना चाहिए। याने 25-30 टन के डायनोसौर को 4-5 टन खाना तो लगता ही होगा। परन्तु यहाँ मुझे पता चला कि वैज्ञानिकों में मतभेद हैं। तो क्या मतभेद हैं?

जीव-जन्तु दो तरह के होते हैं। एक वे होते हैं जिनके शरीर का तापमान वातावरण के साथ घटता-बढ़ता रहता है। इन्हें अस्थिर तापमान वाले जन्तु कह सकते हैं। इनके उदाहरण हैं–छिपकली, मेंढक, साँप वग़ैरह। दूसरी तरह के जन्तु वे हैं–


साल्टोपस


इकोनोडन


लीसोथोसौरस



ऊपर : टिरेन्नोसौरस के दाँतों का काल्पनिक चित्र।
नीचे : टिरेन्नोसौरस के दाँतों के जीवाश्म का चित्र।
इस तरह के नुकीले दाँत आमतौर पर माँसाहारी पशुओं के ही होते हैं।

जिनके शरीर का तापमान स्थिर रहता है, चाहे वातावरण का तापमान कुछ भी हो। इनमें आते हैं– हम, घोड़े-गधे, हाथी, चिड़िया, कबूतर, कुत्ते वगैरह। जिन जन्तुओं के शरीर का तापमान स्थिर रहता है उन्हें ज़्यादा भोजन की ज़रूरत होती है। यानी शरीर के प्रति किलोग्राम भार के अनुपात में उन्हें ज़्यादा भोजन लगता है। अब सवाल उठता है कि डायनोसौर अस्थिर तापमान वाले जन्तु थे या स्थिर तापमान वाले।

यहाँ एक और बात है। आमतौर पर देखा गया है कि अस्थिर तापमान वाले जन्तु थोड़े सुस्त होते हैं, ज़्यादा भागते-दौड़ते नहीं और वर्ष के बहुत ठण्डे या बहुत गर्म मौसम में एक जगह पड़े रहते हैं। मेंढक, छिपकली, साँप वग़ैरह ठण्ड और गर्मी में इसीलिए कम दिखाई पड़ते हैं। ऐसे समय जब ये सुस्त पड़े रहते हैं, तब इन्हें भोजन नहीं लगता। वैसे भी ये बहुत कम भोजन से काम चला लेते हैं।

अब कैसे पता लगे कि डायनोसौर अस्थिर तापमान वाले सुस्त जीव थे या स्थिर तापमान वाले चुस्त जीव? जो वैज्ञानिक मानते हैं कि डायनोसौर का तापमान अस्थिर था, वे कहते हैं कि यदि ऐसा न होता, तो डायनोसौर दिन भर खाते ही रहते। फिर कुछ डायनोसौर ऐसे भी थे जिनका मुँह बहुत छोटा था। सत्तर फुट के शरीर में दो फुट का मुँह छोटा ही कहा जाएगा। ब्रांटोसौर नामक डायनोसौर का मुँह इतना ही होता था।

मगर कई दूसरे वैज्ञानिक कहते हैं कि मुँह छोटा होने से क्या होता है। डायनोसौर अपना भोजन चबाते नहीं थे। यह कोई अचरज की बात नहीं है। आज भी कई ऐसे जन्तु है जो भोजन को चबाते नहीं, निगलते हैं। सारे पक्षी, छिपकलियाँ, मगरमच्छ, मेंढक भोजन को चबाए बगैर निगल जाते हैं। इनमें से अधिकतर जन्तुओं के शरीर में एक ख़ास अंग होता है - गिज़ार्ड - जो इस भोजन को पीसने का काम करता है। इस अंग में पत्थर जैसी रचना होती हैं। जब माँसपेशियों के सिकुड़ने-फैलने से ये पत्थर आपस में टकराते हैं तो 'दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय' की तर्ज़ पर भोजन पिस जाता है। अँग्रेज़ी में इसे बॉल-मिल कहते हैं। डायनोसौर के शरीर में भी गिज़ार्ड देखा गया। यहाँ 'शरीर में देखा गया' का मतलब है कि फ़ॉसिल के अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया कि गिज़ार्डनुमा अंग डायनोसौर के शरीर में भी है।

अब जब तक यह तय नहीं हो जाता कि ये जन्तु स्थिर तापमान वाले थे या अस्थिर तापमान वाले, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि ये कितना खाते थे। मैं तो यह सोच रहा था कि किताबों में लिखा मिल जाएगा कि एक डायनोसौर एक हाथी लंच में और एक हाथी डिनर में खाता था। मगर किताबों में तो लिखा था कि अभी डायनोसौर का मीनू (यानी वह क्या खाता था) तय होना बाक़ी है। मगर दो बातें समझ में आईं। पहली तो यह कि जब डायनोसौर धरती पर थे, तब हाथी नहीं थे। वास्तव में डायनोसौर के ज़माने में बिल्ली से बड़ा कोई अन्य थलचर टिक नहीं पाया। दूसरी बात कौन-सी? दूसरी बात यह कि डायनोसौर के जो चित्र देखे थे उनमें देखा था बड़ी-बड़ी लाल-लाल आँखें, खुला जबड़ा, बड़े-बड़े नुकीले दाँत। तो लगा था कि ज़रूर माँसाहारी हिंसक जन्तु होगा। मगर पढ़ने से पता

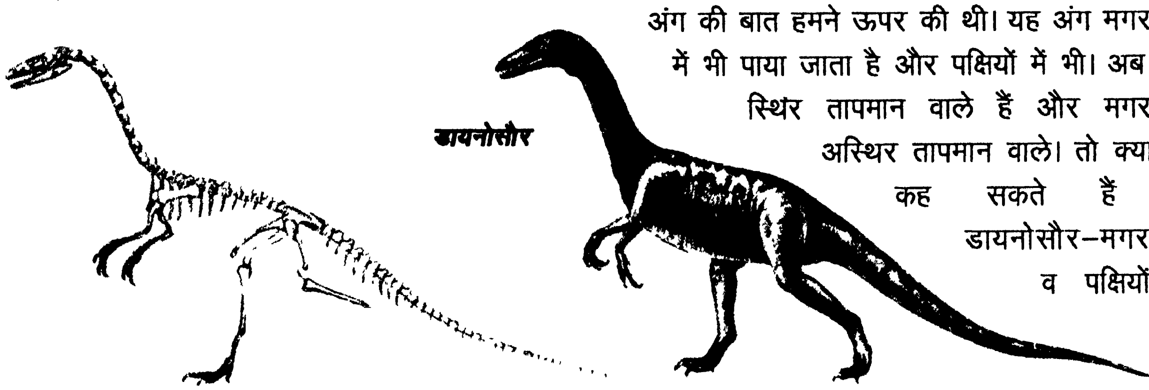
लगा कि डायनोसौर की कई प्रजातियाँ शाकाहारी थीं। ख़ासकर जो असल बड़े-बड़े डायनोसौर थे वे अधिकतर शाकाहारी ही थे।

एक बहुत मज़ेदार बात बताऊँ? फ़ॉसिल जब मिलते हैं, तो वास्तव में वे हड्डियों व अन्य कठोर ऊतकों की छाप ही होते हैं। उनसे आँखों का रंग या चमड़ी की बनावट, रंग आदि पता नहीं लगते। वह सब तो हमारी कल्पना की उड़ान होती है। लाल आँखें भयानक मानी जाती हैं। डायनोसौर हमारी कल्पना में भयानक हैं तो उनकी आँखें लाल बना दीं।

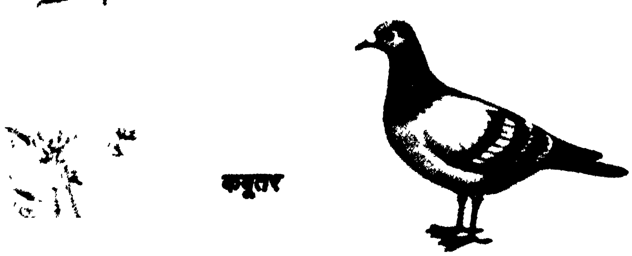
चित्र देख-देखकर एक और बात मेरे ख़याल में आई थी। ये इतना वज़नी शरीर लेकर चलते-फिरते कैसे होंगे? चार पैर पर चलते थे या दो पैरों पर?

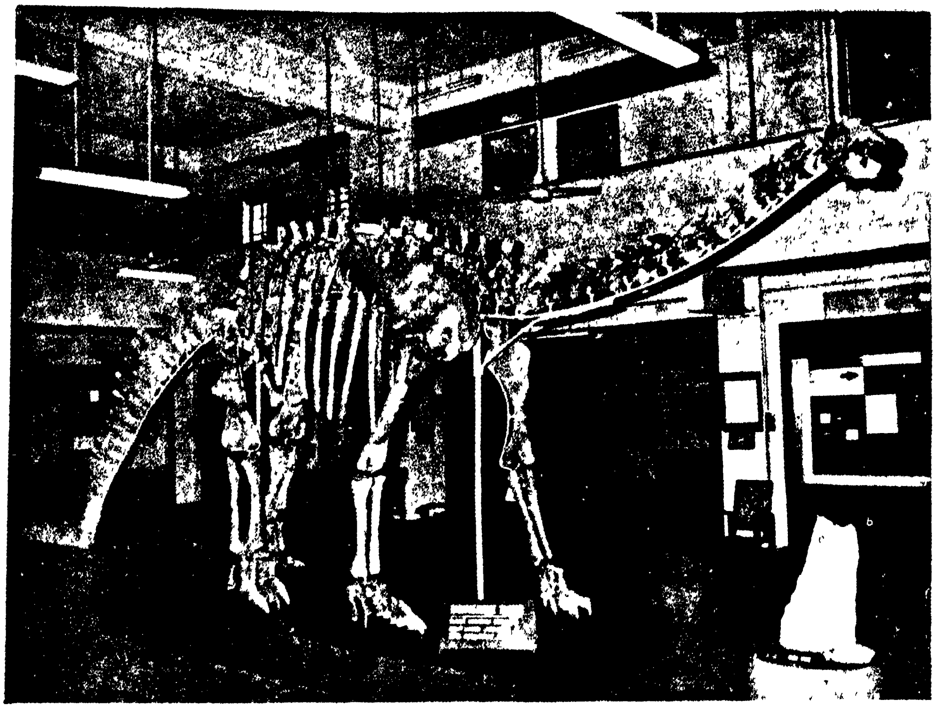
बहुत वर्षों तक वैज्ञानिक मानते रहे कि ये सारे महाजीव चार पैरों पर चलते थे। इसका एक कारण यह था कि वैज्ञानिक इन्हें मगरमच्छ के ख़ानदान का मानते थे। मगर बाद में इनकी हड्डियों के जोड़ का अध्ययन करने से पता चला कि कई सारे बड़े-बड़े डायनोसौर दो पैरों पर चलते थे और अपनी मज़बूत पूँछ का उपयोग संतुलन बनाने में करते थे। इनके कूल्हों की हड्डी से पिछली टाँगों के जुड़ने के ढंग पर काफ़ी अनुसंधान किया गया।

परन्तु उससे भी मज़ेदार बात यह पता चली कि इनकी हड्डियों में खोखलापन होता है। यानी हड्डियाँ इस तरह बनी होती हैं कि उनमें हवा भर सके। इसकी वजह से हड्डियों का वज़न ज़्यादा नहीं होने पाता। कई वैज्ञानिकों का कहना है कि यह गुण ठीक वैसा है जैसा पक्षियों में होता है। गिज़ार्ड नामक अंग की बात हमने ऊपर की थी। यह अंग मगरमच्छ में भी पाया जाता है और पक्षियों में भी। अब पक्षी स्थिर तापमान वाले हैं और मगरमच्छ अस्थिर तापमान वाले। तो क्या हम कह सकते हैं कि डायनोसौर–मगरमच्छ व पक्षियों के


डायनोसौर


आर्कियोप्टेरिक्स


कबूतर



पाँच मीटर लम्बे एक शाकाहारी डायनोसौर (बारापासौरस टैगोरी) का कंकाल। यह महाराष्ट्र के चन्द्रपुर ज़िले में मिला था और अब कलकत्ता में भारतीय सांख्यिकी संस्थान के संग्रहालय में रखा है।

बीच की अवस्था है?

कुछ वैज्ञानिकों की यही मान्यता है। तुमने आर्कियोप्टेरिक्स नामक जन्तु का नाम शायद सुना हो। आर्कियोप्टेरिक्स एक ऐसा जन्तु है जो अब धरती पर नहीं है। आर्कियोप्टेरिक्स नामक इस जन्तु का फ़ॉसिल देखकर कोई भी कह उठेगा कि यह डायनोसौर व आधुनिक पक्षियों के बीच की कड़ी है (सामने के पृष्ठ पर दिए चित्र देखो)। पर इस मत पर विवाद है।

एक सवाल मन में यह भी उठता है कि जब दुनिया में इतने बड़े-बड़े जीव विचरण कर रहे हों, तो बाक़ी जीवों की हालत क्या होती होगी। पहले तो यही पता लगाएँ कि डायनोसौर की कितनी प्रजातियाँ रहीं। अभी तक छोटी-बड़ी 800 प्रजातियाँ पहचानी गई हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि ये सारी 800 प्रजातियाँ एक समय पर इस धरती पर मौजूद थीं। कुल मिलाकर 800 प्रजातियाँ 13 करोड़ साल में।

किसी भी परिस्थिति में जीव-जन्तु भोजन, रहवास आदि के अलग-अलग साधन अपनाते हैं। कोई पानी में रहेगा, तो कोई ज़मीन पर; तो कोई पेड़ पर, तो कोई बिल बनाकर धरती के अन्दर। पानी में भी–कोई नदी के पानी में तो कोई समुद्र में। भोजन में भी ऐसी ही विविधता है। कोई छोटी-मोटी घास-झाड़ियों पर ज़िन्दा है, तो कोई बड़े पेड़ की पत्तियों पर, तो कोई फल पर, फूल के रस पर। कोई माँस खाता है, तो कोई मरे हुए जन्तु को चीरता-फाड़ता है। इन्हें हम कहते हैं 'इकॉलॉजी में उपस्थित आश्रय' या 'पारिस्थितिक आश्रय'। वैज्ञानिकों का मानना है कि उस समय ज़मीन के सारे पारिस्थितिक आश्रय, जिनका उपयोग मझौले व बड़े जन्तु कर सकते थे डायनोसौरों ने घेर लिए थे। कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी थी ज़मीन पर। एक तरह से ज़मीन पर डायनोसौरों का राज था। इसीलिए उस युग को डायनोसौर का युग कहा जाता है।

आज यही हाल स्तनधारियों का है। किसी और के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। ज़रा नज़र दौड़ाओ, क्या ज़मीन पर तुम्हें स्तनधारियों के अलावा कोई बड़ा जीव नज़र आता है? हाथी, घोड़े, गधे, शेर, बकरी, सुअर, चीते, मनुष्य, गाय, भैंस, ऊँट, भालू, भेड़, सब के सब स्तनधारी हैं। अजगर जैसे बड़े जीव भी बिल में पड़े हैं। मगर डायनोसौर

युग में ऐसा कोई स्तनधारी नहीं था जो बिल्ली से बड़ा रहा हो। ऐसा एकछत्र राज था ज़मीन पर डायनोसौरों का! तुम पूछोगे कि कैसे पता? मैंने भी यही सोचा कि जब सात करोड़ साल पहले की बातें हैं, कोई गवाह है नहीं, तो कैसे पता?

तर्कविज्ञान है बड़ी चीज़। इसको जानने का एक तरीक़ा है। वह तरीक़ा है फ़ॉसिल गिनने का। इस विज्ञान का एक ख़ास नाम है जो मुझे याद नहीं आ रहा है। पर नाम को छोड़ो। जहाँ-जहाँ फ़ॉसिल मिलते हैं, उस पूरे इलाक़े के चप्पे-चप्पे को ध्यान से देखा जाता है, जाँच की जाती है। अब यदि अधिकतर जगह ऐसा हो कि बड़े-बड़े डायनोसौर फ़ॉसिल मिलें और छोटे-छोटे इक्का-दुक्का स्तनधारी मिलें तो क्या कहेंगे? यह पूरा तर्क इस सिद्धांत पर टिका है कि यदि जन्तु दफ़न होकर फ़ॉसिल बन रहे हैं, तो उन फ़ॉसिलों की संख्या जन्तुओं की संख्या के अनुपात में ही होगी।

फ़ॉसिल गिनकर एक और मज़ेदार बात का पता लगा। वैज्ञानिक लोग जो इकॉलॉजी, याने जीवों के परस्पर सम्बंधों का अध्ययन करते हैं वे शिकारी-शिकार की संख्याओं का पता लगाते हैं। शिकारी-शिकार अनुपात से कई निष्कर्ष निकाले जाते हैं। जैसे इस समय जंगल की इकॉलॉजी में सर्वोच्च शिकारी शेर है। शेर और उसके शिकार जैसे हिरन, खरगोश, बारहसिंघा की संख्याओं के बीच का अनुपात बताएगा कि शेर भोजन कितना करता है। इससे पता लगाया जा सकता है कि शेर स्थिर तापमान वाला जन्तु है या अस्थिर तापमान वाला। स्थिर ताप वाले शिकारी अपने शिकार की तुलना में 3-4 प्रतिशत होते हैं। फ़ॉसिल गिनकर पता लगा कि माँसाहारी डायनोसौर में भी डायनोसौर अपने शिकारों की तुलना में 5% से ज़्यादा कभी न हुए। प्रतिशत निकालने की क्रिया में संख्या नहीं बल्कि जन्तुओं के कुल वज़न का ध्यान रखा जाता है। यानी 1 शेर (200 कि.ग्रा.) कम से कम 100 खरगोशों (200 कि.ग्रा.) के बराबर होगा। यदि किसी स्थान पर 1 शेर (200 कि.ग्रा.) और 1000 खरगोश (यानी कुल 2000 कि.ग्रा.) हों, तो हम कहेंगे कि शेर 1 प्रतिशत है। इस तरह की गणना के आधार पर भी कुछ वैज्ञानिकों की राय बनी कि डायनोसौर स्थिर तापमान वाले जन्तु हैं।

इस बारे में एक और रोचक बात है। स्थिर ताप का अर्थ है कि वातावरण के तापमान के साथ शरीर का तापमान न बदले। यह दो तरह से हो सकता है। एक है कि वह जन्तु ख़ूब खाना खाए और उसके पाचन से अपने शरीर को गर्म रखे। परन्तु इसका एक और तरीक़ा है। यह तरीक़ा भौतिक शास्त्र के एक सिद्धांत पर आधारित है– इसका नाम दे सकते हैं 'आकार स्थिर तापमान'। जब जन्तु का आकार बढ़ता है तो उसकी बाहरी सतह का क्षेत्रफल भी बढ़ता है और कुल आयतन भी। मगर क्षेत्रफल के मुकाबले आयतन ज़्यादा तेज़ी से बढ़ता है। अब गर्मी पैदा तो होती है पूरे शरीर में से, मगर यह गर्मी वातावरण में पहुँचती है शरीर की सतह पर से। यानी आकार बढ़ने पर गर्मी पैदा होने की रफ़्तार, उसके निकलने की रफ़्तार से ज़्यादा तेज़ी से बढ़ती है। इसलिए बड़े जन्तु कम भोजन के द्वारा भी ऊँचा तापमान बनाए रख सकते हैं।

यह सब जानकर मैं बड़ा चक्कर में पड़ गया। डायनोसौर छोटे थे या बड़े थे? स्थिर ताप वाले थे या अस्थिर ताप वाले थे? मगरमच्छ के वंश के थे या पक्षियों के कुल के? शाकाहारी भी थे और माँसाहारी भी। तो क्या डायनोसौर एक वंश के नहीं थे? क्या वे अलग-अलग वंश के, एक-दूसरे से असम्बंधित जन्तु थे? तो पहले यह देखें कि जन्तुओं को एक ही वंश में कैसे रखते हैं? एक तो उनकी शरीर-रचना, शरीर क्रिया में कुछ न कुछ विशेष समानता होनी चाहिए। जैसे स्तनधारियों की मादा में स्तन होते हैं तथा वे अपनी संतान को दूध पिलाती हैं। एक को छोड़कर सभी स्तनधारी शिशु को जन्म देते हैं, अण्डे नहीं देते। इसी प्रकार क्या डायनोसौरों में शरीर रचना की कोई ख़ास समानता मिलती है? दूसरे शब्दों में डायनोसौर किसे कहें?

ये सवाल बहुत परेशान करता रहा और अभी भी कर रहा है। शरीर-रचना के आधार पर सभी डायनोसौरों को एक साथ रखना मुमकिन नहीं लगता। मोटे तौर पर कहें तो डायनोसौर वे जन्तु हैं



सेन्ट्रोसौरस और मोनोक्लियस जैसे डायनोसौरों की नाक पर सींग होते थे। इनकी गर्दन के बाहर के उठे हुए हिस्से से भी दो सींग निकले होते थे, जो झुककर माथे तक आते थे।

जिनमें मगरमच्छ (सरिसृप-रेप्टाइल), पक्षी तथा स्तनधारियों के कुछ-कुछ लक्षण मिलते हैं। काफ़ी पहले एक परिभाषा दी गई थी जो शायद ठीक ही हो, 'ऐसे सरिसृप जिनमें ख़ासकर पिछली टांगों में पक्षीनुमा बदलाव पाए जाते हैं।' पर क्या इतनी मोटी परिभाषा से हम संतुष्ट हो जाएँ। शायद होना पड़े। मगर कोशिश करने में क्या जाता है। वैज्ञानिकों ने डायनोसौरों के विकास का अध्ययन किया। दूसरे शब्दों में इनके पुरखों का पता लगाया। कुछ वैज्ञानिकों का दावा है कि वे कह सकते हैं कि डायनोसौर एक ही वंश के जन्तु हैं।

ख़ैर एक ही वंश के हों या न हों मगर यह तो तय है कि जिन जन्तुओं को डायनोसौर कहा गया है उन्हीं में से कुछ आगे विकसित होकर पक्षियों के रूप में सामने आए। दूसरी बात यह तय है कि डायनोसौर जब तक रहे तब तक राज किया। मगर फिर गए कहाँ ये राजा?

यह प्रश्न वास्तव में सबसे ज़्यादा मथता रहा है सभी को, कि डायनोसौर आज से सात करोड़ वर्ष पूर्व ख़त्म कैसे हो गए? इस प्रश्न का ईमानदारी से उत्तर दें, तो कहेंगे कि हमें नहीं मालूम। हाँ, अनुमान ज़रूर लगाए जा सकते हैं और लगाए भी गए हैं। इन अनुमानों में से कुछ तो तथ्यों पर आधारित हैं और कुछ ख़्याली पुलाव। परन्तु इस पुलाव का सेवन करने से पहले हाज़मे की एक गोली के रूप में यह याद रखना ज़रूरी है कि जीवों का या जीव समूहों का सफ़ाया हो जाना कोई अनूठी बात नहीं है। डायनोसौरों से पहले भी ऐसा होता रहा है, डायनोसौरों के बाद भी ऐसा होता रहा है और आज भी हो रहा है। डायनोसौरों को लेकर इतना हल्ला- गुल्ला हो रहा है क्योंकि वे इतने बड़े थे और इतने हावी थे कि किसी ने 'सोचा' तक न होगा कि वे अचानक ख़त्म हो जाएँगे। मैंने कहा अचानक ख़त्म हो जाएँगे। मगर क्या हमें पक्के तौर पर मालूम है कि वे अचानक ख़त्म हुए थे। इसका उत्तर आगे मिलेगा।

बहरहाल, महासफ़ाए की जो भी रीति हम सोचें उसमें कुछ बातों की व्याख्या शामिल होना चाहिए। जैसे जब यह महासफ़ाया हुआ तो सारे डायनोसौर समाप्त हो गए मगर साथ में कई बड़े स्थिर तापमान वाले थलचर भी ख़त्म हुए। उसके अलावा समुद्री जीवों का भी महासफ़ाया हुआ जबकि नदी के मीठे पानी वाले जीव बच गए थे। पेड़-पौधों का नुकसान बहुत कम हुआ था और अस्थिर ताप वाले थलचर भी बच निकले थे। यानी महासफ़ाए की जो भी वजह रही हो, मगर वह सब जन्तुओं, पौधों को एक समान नहीं मारती थी।

महासफ़ाया अचानक हुआ या धीरे-धीरे?

मतभेद हैं। कोई यह मानता है तो कोई वह। मगर ज़्यादातर वैज्ञानिक अब यह मानते हैं कि महासफ़ाया धीरे-धीरे हुआ था। कैसे पता चलता है? दुनिया में कई जगह ऐसी हैं जहाँ हमें अलग-अलग समय पर बनी चट्टानों की परतों में डायनोसौरों के फ़ॉसिल मिलते हैं। इनके अध्ययन से पता चलता है कि धीरे-धीरे डायनोसौर की प्रजातियों में कमी आती गई।



परन्तु अचानक महासफ़ाए के पक्ष में भी तर्क हैं। पहली बात कि फ़ॉसिल रिकॉर्ड के आधार पर हम कभी पक्के तौर पर नहीं कह सकते कि उस ज़माने में वास्तविक परिस्थिति क्या थी। दूसरी बात चट्टानों के विश्लेषण से सम्बंधित है। एक तत्व होता है इरिडियम। यह तत्व पृथ्वी की सतह पर बहुत कम मात्रा में पाया जाता है जबकि पुच्छल तारों वग़ैरह में ज़्यादा मात्रा में पाया जाता है। चट्टानों के विश्लेषण से यह पता लगा है कि जिस समय डायनोसौर ख़त्म हुए थे, उस समय की चट्टानों में इरिडियम की मात्रा बहुत ज़्यादा है। तो हो सकता है कि उस समय कोई पुच्छल तारा पृथ्वी से आ भिड़ा हो तथा इसी के फलस्वरूप डायनोसौर ख़त्म हो गए हों। कुछ वैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि ऐसा कोई आकाशी पिण्ड जब पृथ्वी से टकराएगा, तो चारों तरफ़ धूल ही धूल हो जाएगी। यह धूल पूरी धरती को दस-बीस सालों तक ढक लेगी। सूरज की रोशनी नहीं पहुँच पाएगी। पौधे भोजन नहीं बना पाएँगे। जन्तु भोजन के अभाव में मर जाएँगे। इस बात से तो लगता है कि महासफ़ाया दस–बीस साल में पूरा हो गया होगा। कुछ वैज्ञानिक इस सिद्धांत में कई ख़ामियाँ गिनाते हैं। आख़िर भोजन की कमी का असर सब जन्तुओं पर क्यों नहीं पड़ा?

महासफ़ाए की वजहें तो बहुत सोची गई हैं परन्तु सच क्या है, हमें नहीं पता। शायद कभी पता ही न चले। कोई कहता है 'गर्मी बहुत बढ़ गई' तो कोई कहता है 'सर्दी बहुत बढ़ गई'। किसी की राय है कि "उथले समुद्रों का पानी सिमट गया, महाद्वीप एक दूसरे से जुड़ गए, नई-नई बीमारियाँ फैलीं,' 'डायनोसौर के अण्डे स्तनधारी खा गए,' 'पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की दिशा पलट गई,' 'डायनोसौर अंधे हो गए थे, यहाँ-वहाँ गिर-पड़कर मर गए'। ऐसे बहुत से कारण दिए गए हैं। हरेक का अपना-अपना तर्क है। तो क्या करें, छोड़ दें अध्ययन करना?

मुझे डायनोसौर या ऐसे किसी मामले को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि इन्सान में जानने की जिज्ञासा इतनी ज़्यादा है कि हम छोड़ तो नहीं ही सकते। किसी भी समस्या को हम तरह-तरह से काबू करने की कोशिश करते हैं। और विज्ञान की ख़ूबी यह है कि उसमें अलग-अलग निष्कर्षों को रखने की गुंजाइश है। अलग-अलग निष्कर्ष होने पर भी आपस में बातचीत की तहज़ीब है।

डायनोसौर का महासफ़ाया हमारा ध्यान खींचता है क्योंकि वे तेरह करोड़ वर्षों तक इस धरती पर छाए रहे थे। हमें अपने-आप पर बड़ा गर्व है। मालूम है हम इस धरती पर कितने साल से हैं? मात्र एक लाख साल से! जब हम यह बात करते हैं कि देखो डायनोसौर टिक नहीं पाए, तो कहीं यह भी सोचें कि क्या हम टिक पाएँगे? ग्रीनहाउस प्रभाव, ओज़ोन, बिगड़ता पर्यावरण, मिट्टी-पानी की बरबादी, प्रदूषण, और भी न जाने क्या-क्या। डायनोसौर के अध्ययन का मतलब है उस ज़माने का अध्ययन। हो सकता है पर्यावरण व इकॉलॉजी में डायनोसोर ने अनजाने में कुछ ऐसे परिवर्तन किए हों, जो उनके महासफ़ाए के सबब बन गए। मगर कहीं हम ऐसे परिवर्तन जानबूझकर तो नहीं कर रहे? ❑❑



उड़ने *वाला डायनोसौर- रैमफोरायनकस। सामने के पृष्ठ पर इसी डायनोसौर के फॉसिल का चित्र है। फॉसिल के अध्ययन और कल्पना के आधार पर इसका यह रूप गढा गया है। यहाँ दिए अन्य चित्र भी इसी तरह से गढे हुए है।*

अल्ट्रासौरस *- लगभग साठ फुट ऊँचाई वाले ये डायनोसौर शाकाहारी थे और आज के हाथियो की तरह ही झुण्ड में रहते थे।*

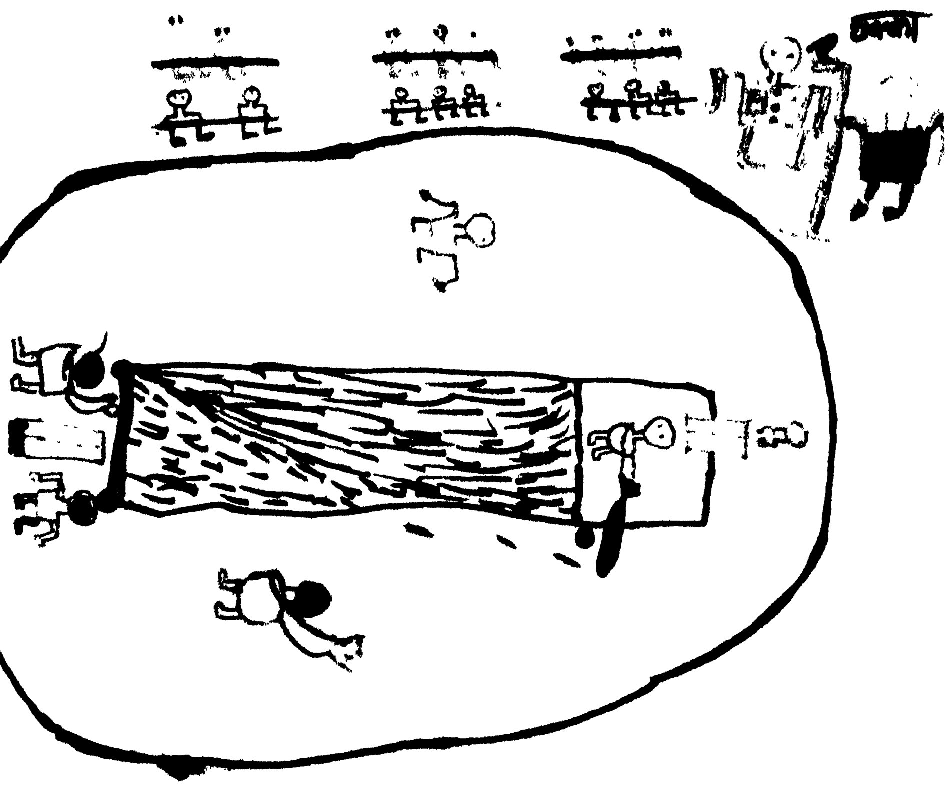


न्यूयॉर्क *के प्रकृति विज्ञान संग्रहालय में गढा गया है बैरोसौरस। पर सवाल यह उठता है कि इसके मस्तिष्क तक खून कैसे पहुँचता होगा? यह तो तभी संभव है जब इसके एक नहीं आठ दिल हों।*

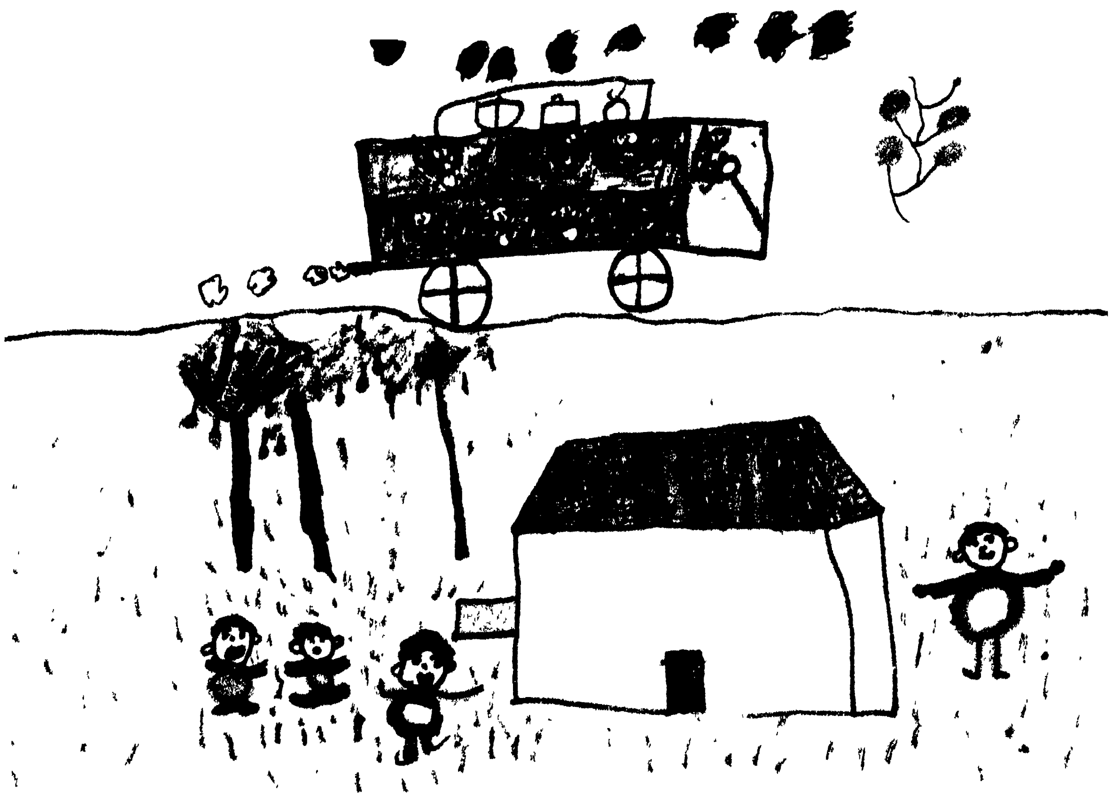




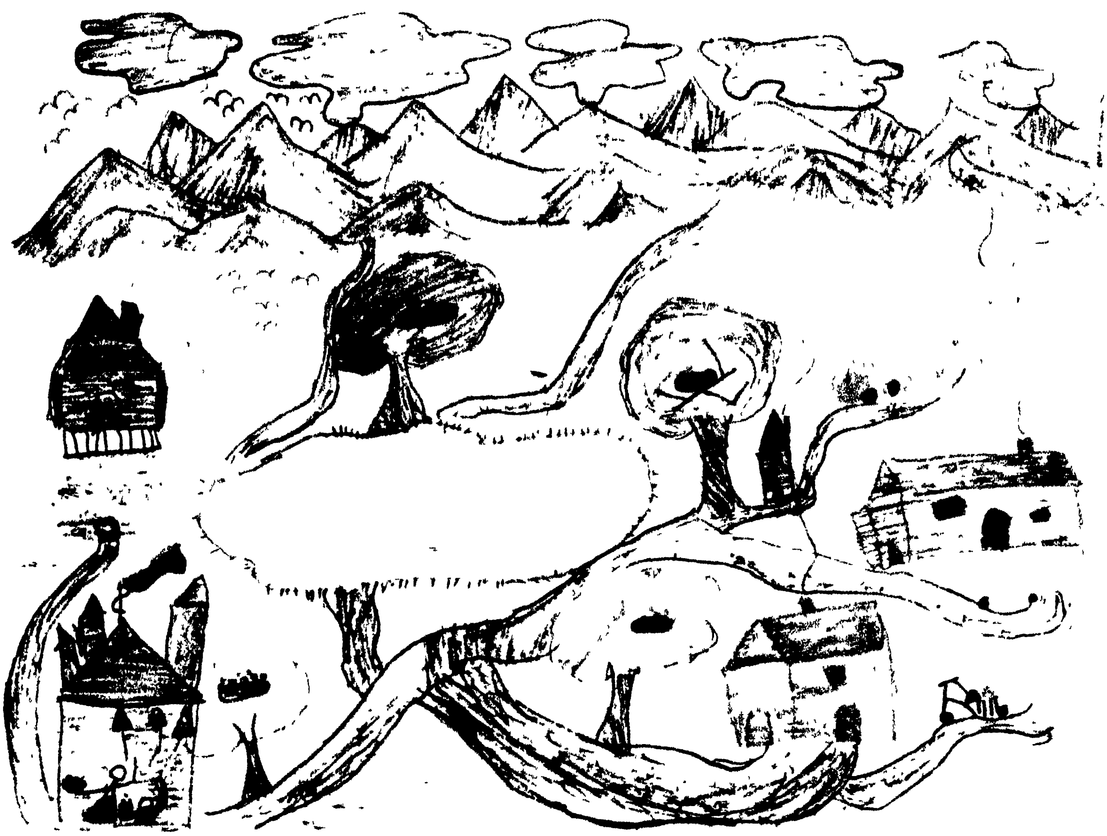
एल्बर्टोसौरस। *इसकी एक जोडी अविकसित टॉगें हैं, जिनके बारे में आज भी वह सवाल है ये किस काम आती होगी?*



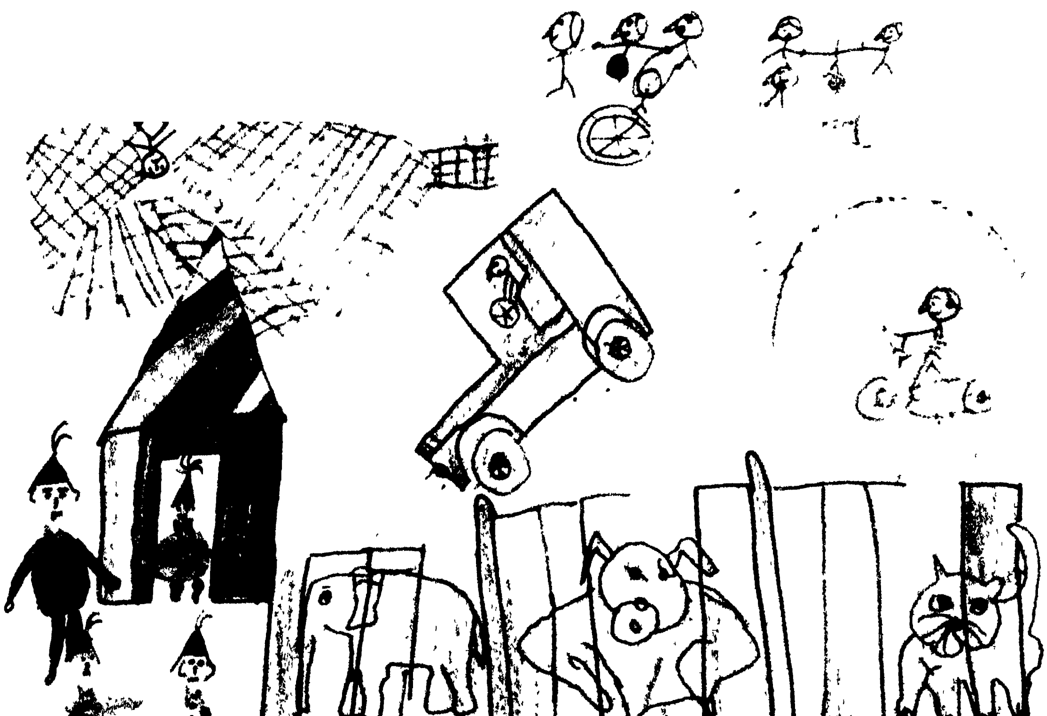
राजेश नागौरी पाँचवी, राजाबरारी, टिमरनी, म. प्र



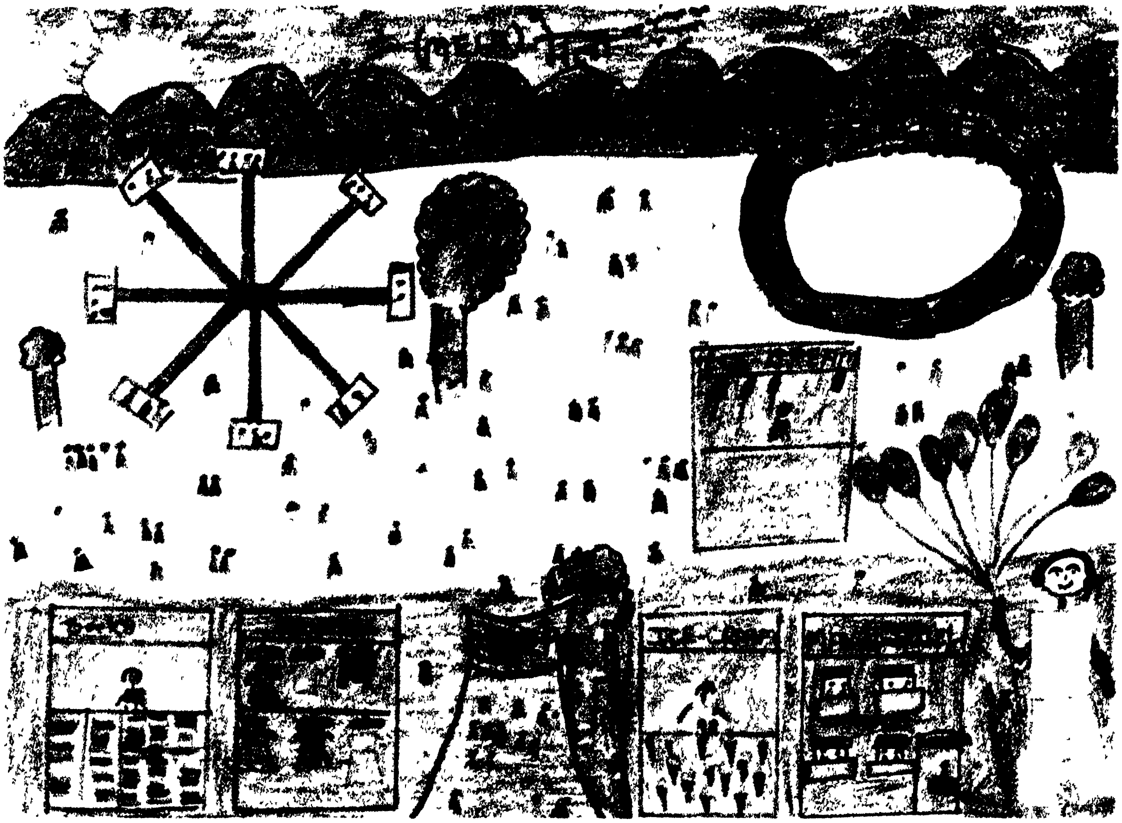
सुमित कुमार, चौथी, जरलाभाटा, बिलासपुर



स्नेहा चौधरी, सात वर्ष, अजमेर, राजस्थान



नितेश भाटिया, सात वर्ष, अजमेर, राजस्थान



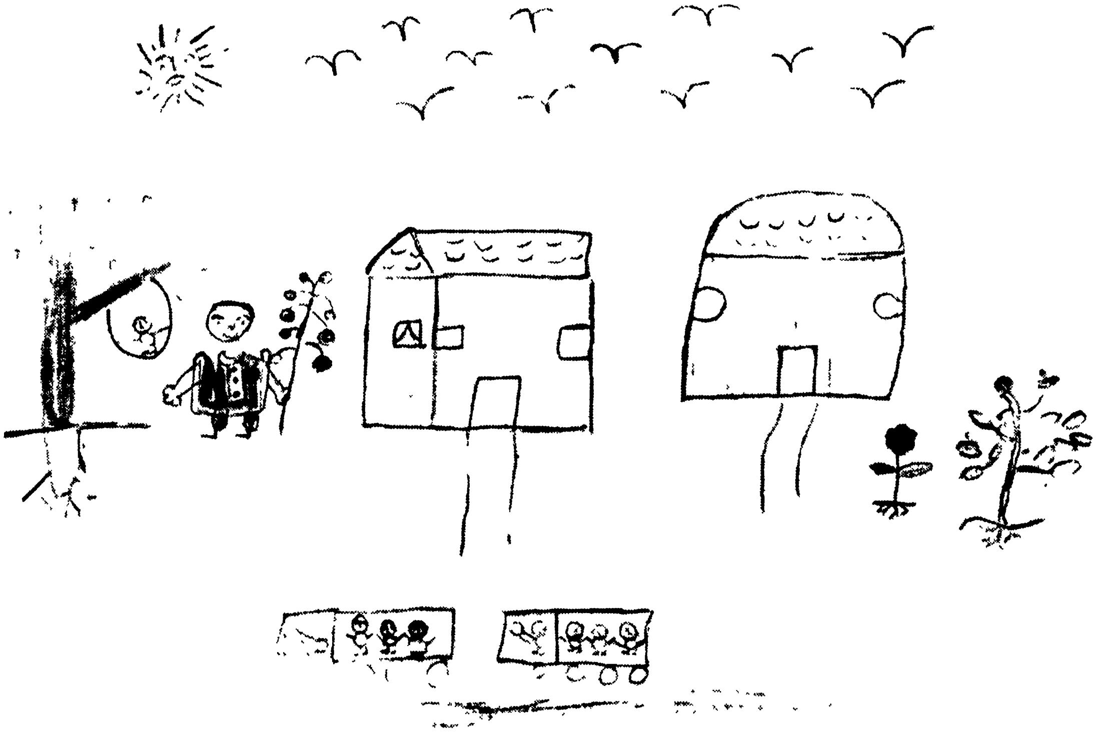
प्रियंका भागवत, ग्यारह वर्ष, भोपाल, म. प्र.



पीयूष भागवत, आठ वर्ष, भोपाल, म. प्र.



रोशन सरल, छठवी, इंदौर, म.प्र.



महिमा कपूर, सात वर्ष, राजाबरारी, टिमरनी, म.प्र.



गाँव में मेला

लगा गाँव में मेरे मेला
धमा चौकड़ी
रेलम-पेला!

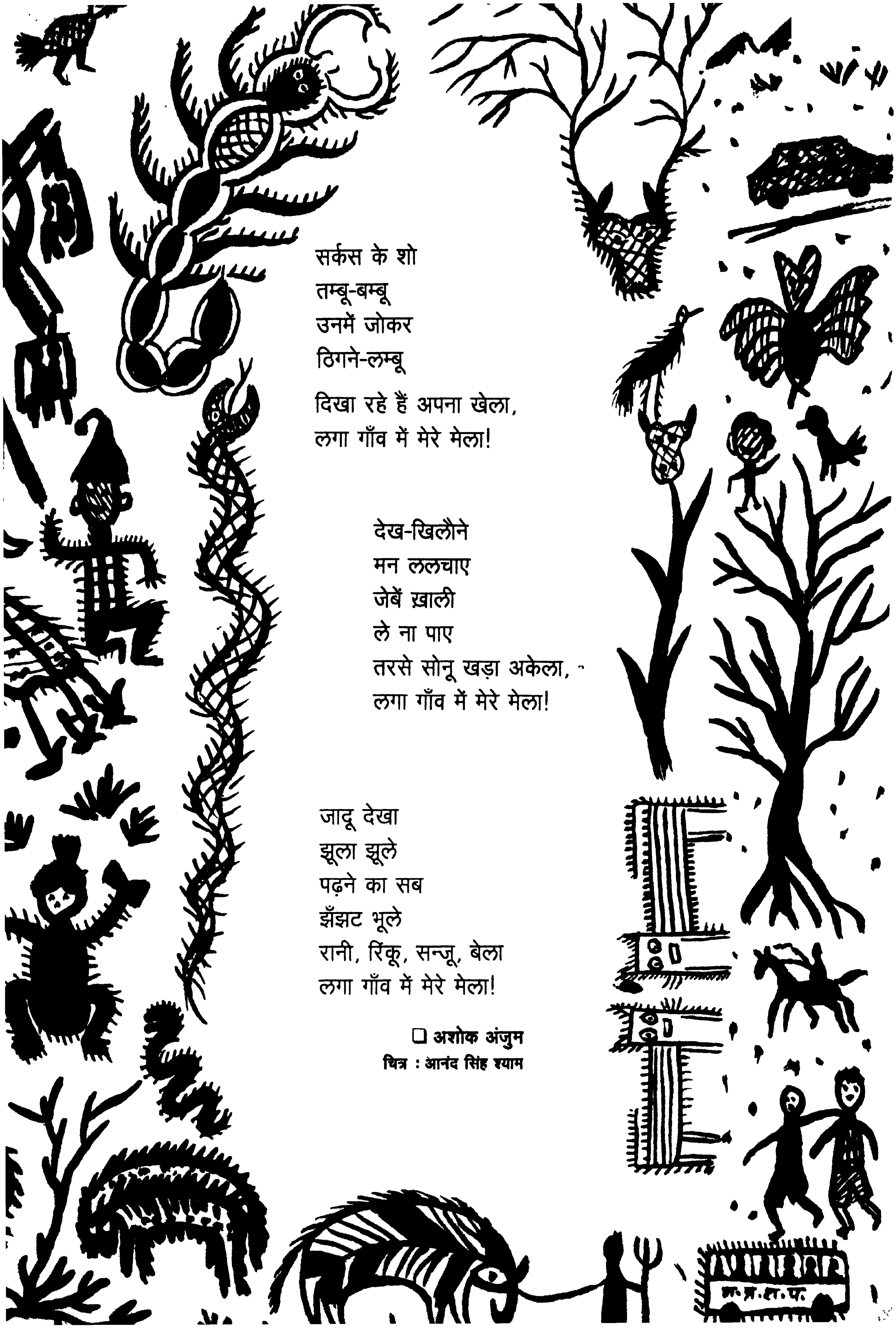
दूध-जलेबी
चाट-पकौड़ी
खस्ता-खस्ता
सजी कचौड़ी
बेच रहे हैं अनगिन ठेला,
लगा गाँव में मेरे मेला!

बन्दर वाले,
भालू वाले
खेल-दिखाते
हैं मतवाले
जिधर देखिए भीड़ का रेला!
लगा गाँव में मेरे मेला!









सर्कस के शो
तम्बू-बम्बू
उनमें जोकर
ठिगने-लम्बू

दिखा रहे हैं अपना खेला,
लगा गाँव में मेरे मेला!

देख-खिलौने
मन ललचाए
जेबें ख़ाली
ले ना पाए
तरसे सोनू खड़ा अकेला,
लगा गाँव में मेरे मेला!

जादू देखा
झूला झूले
पढ़ने का सब
झँझट भूले
रानी, रिंकू, सन्जू, बेला
लगा गाँव में मेरे मेला!

❑ **अशोक अंजुम**

चित्र : आनंद सिंह श्याम

सौवें पड़ाव पर

चकमक

❑ डॉ. हरिकृष्ण देवसरे

दो चरवाहे थे। चलो उनके नाम रख लेते हैं 'अकड़ू' और 'मकड़ू'। दोनों अपनी-अपनी लाठियाँ लिए मवेशी चरा रहे थे। दोनों में किसी बात पर कहा-सुनी हो गई। अकड़ू ने पास की एक चट्टान पर लाठी पटककर मकड़ू को धमकाया। मकड़ू ने देखा कि अकड़ू की लाठी से चिनगारी निकली। अकड़ू भी चकराया। उसने फिर लाठी पटकी – फिर चिनगारी निकली। लगा कि इस चट्टान में कोई जादू है। फिर तो गाँव के लोग आए। उन्होंने देखा, परखा, प्रयोग किया और इस तरह लोगों ने 'चकमक' पत्थर को जाना कि इससे तो आग बनाई जा सकती है।

वास्तव में मानव ने आदिम युग से ही देखने, परखने और प्रयोग करने का क्रम शुरू कर दिया था और आज हमने जो कुछ जाना है, वह इसी का फल है। आज के विज्ञान का भी यही सिद्धांत है। तब विज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने वाली संस्था 'एकलव्य' ने यदि अपनी पत्रिका का नाम 'चकमक' रखा तो यह ठीक ही था। इसके पहले ही अंक में सम्पादक ने लिखा था – *'हम उम्मीद करते हैं कि तुम्हारी यह चकमक नई-नई चीज़ों को सीखने और सत्य की खोज के लिए चिनगारी पैदा कर सकेगी, और यह सब करने में तुम्हें मज़ा आएगा।'*

आज 'चकमक' अपनी यात्रा के सौवें पड़ाव (अंक) पर पहुँच चुकी है। इसकी इस लम्बी यात्रा से आशा बँधती है कि यह अभी अपनी मंज़िल की ओर निरन्तर बढ़ती जाएगी। हर साल इसके साथ बहुत से नए यात्री जुड़ते हैं और जो उम्र की मंज़िल पा लेते हैं, वे उसकी याद संजोए वैज्ञानिक दृष्टिकोण लिए जीवन की राह पर बढ़ जाते हैं।

आज जब 'चकमक' सौवें पड़ाव पर खड़ी है तो एक बार पीछे मुड़कर देखती है कि इस लम्बी यात्रा में उसने क्या-क्या देखा, क्या खोया-क्या पाया, उसे कौन-कौन से अनुभव हुए, उसने कहाँ-कहाँ अपने निशान छोड़े हैं।

'चकमक' को देखते ही एक बात बहुत स्पष्ट रूप से उभरती है कि यह बच्चों की ऐसी अपनी पत्रिका है जिसमें उनकी रचनात्मकता को बढ़ाने के पूरे अवसर दिए जाते हैं। हमारे यहाँ, कम से कम हिन्दी में तो कोई ऐसी पत्रिका नहीं है जो बच्चों की रचनात्मकता को इतने नियमित रूप से प्रोत्साहित करती हो। अच्छी बात यह भी है कि जहाँ यह विज्ञान की पत्रिका है, वहीं इसकी वैज्ञानिक दृष्टि समसामयिक विषयों, घटनाओं और व्यक्तियों पर भी जाती है। दरअसल आज और आने वाली शताब्दी के लिए लोगों में वैज्ञानिक दृष्टि का विकसित होना बहुत ज़रूरी है। और बचपन से ही वह दृष्टि चकमक द्वारा निर्मित किए जाने का अर्थ है कि वह नई सदी के लिए ऐसे लोग तैयार कर रही है जो उसके सचेत नागरिक होंगे। वैसे नई सदी अब दूर नहीं है।

आज विज्ञान जितना व्यापक हो गया है, 'चकमक' ने भी उसे उतने ही व्यापक रूप में अपनाया है। प्रकृति, वनस्पति, जीव – जन्तु, भौतिक जगत, आकाश, रसायन – सभी कुछ इसमें जगह पाते हैं। और बोझिल से बोझिल विषय भी सरल भाषा, रोचक शैली और आकर्षक चित्रों के साथ इस तरह पेश किए जाते हैं कि छोटी से लेकर बड़ी उम्र तक के बच्चे उन्हें समझ लेते हैं।

यूँ तो चकमक के नियमित पाठक चकमक के अंकों की विविधता से अच्छी तरह से परिचित होंगे ही। फिर भी नए पाठकों के लिए चकमक के कुछ अंकों की चर्चा करना उपयोगी होगा।

सन् 85 के जुलाई मास से लेकर जून, 86 तक के अंकों में मुखपृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक बच्चों द्वारा बनाए चित्रों, उनकी रचनाओं और ज्ञान-विज्ञान की बहुत - सी रोचक सामग्री के साथ

कई रोचक कहानियाँ भी प्रस्तुत की गई हैं। लेकिन इन सबके साथ मनोरंजन की बातें, माथापच्ची के लिए सवाल और रोचक बातें भी दी गईं। इससे इस पत्रिका में बच्चों के बीच अपनापन आया और 'पत्रिका' तथा 'पाठक' के बीच का रिश्ता मज़बूत हुआ। 'सवालीराम', 'मेरा पन्ना', 'अपनी प्रयोगशाला' जैसे कई स्तम्भ पाठकों ने पसंद किए। उन पाठकों की सोच और दृष्टि का एक नमूना, छिन्दवाड़ा की संध्या जोशी का यह पत्र है – *'जनवरी की चकमक में 'मनुष्य और पेड़' शीर्षक एक चित्र छपा है। इस चित्र में चित्रकार मनुष्यों को यह बताना चाहता है कि वे अपने भौतिक स्वार्थ के लिए आँख मूँदकर वृक्षों को काट रहे हैं। ऐसा करके वे वृक्ष ही नहीं बल्कि अपनी गरदन भी काट रहे हैं।*

जून 86 का अंक 'पानी विशेषांक' था। इसमें पानी से सम्बंधित विविध सामग्री दी गई थी। एक ओर जहाँ इसमें पानी का महत्व, समुद्र-नदी-तालाब आदि पानी के स्रोतों, बादलों, वर्षा आदि की चर्चा हुई, वहीं पानी की समस्याओं, उसके वैज्ञानिक प्रयोग और रोचक तथ्यों के साथ-साथ प्रेमचन्द की कहानी 'ठाकुर का कुआँ भी दी गई–जो पानी के मानवीय और सामाजिक पक्ष को उभारने में सफल हुई।

जुलाई, 86 से जून, 87 के अंक दूसरे वर्ष की 'चकमक' यात्रा के साक्षी हैं। अक्टूबर, 86 में 'चकमक की कहानी' में इस पत्रिका को प्रकाशित करने के पीछे छिपी कहानी से लेकर, पत्रिका के सम्पादन, चित्रांकन, मुद्रण आदि की पूरी जानकारी देकर पाठकों को यह बताया गया कि इस काम को कैसे किया जाता है। इसका फल यह हुआ कि पाठकों की नज़र और पैनी हुई। मनीष स्याग ने देवास से लिखा कि – *'दिसम्बर, 86 आवरण पृष्ठ के अन्तिम पृष्ठ पर छपा चित्र चीन की एक चित्र-पुस्तक के चित्र की नकल है।'* सम्पादक ने खेद के साथ चित्रकारी करने वाले तथा रचनाएँ भेजने वाले बच्चों को सावधान किया।



मार्च, 87 में विश्व प्रसिद्ध कथा 'आश्चर्य लोक में एलिस' का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके साथ पुस्तक के मूल चित्र भी छापे गए। बच्चों में कल्पनाशक्ति बढ़ाने वाली यह पुस्तक, सौ साल से भी ज़्यादा समय से, विश्व भर के बच्चों का मनोरंजन कर रही है। पुस्तक का हिन्दी अनुवाद हिन्दी के प्रसिद्ध कवि शमशेर बहादुर सिंह ने 1960 में किया था। छोटे-छोटे सरल वाक्य और सीधी सादी भाषा। जिसने इसे पढ़ा होगा, उसे ज़रूर मज़ा आया होगा।

हम जिन हाथों से दिन-रात काम करते हैं, उनके महत्व के बारे में शायद ही सोचते हों या बहुत-सी बातें जानते हों! इसे याद दिलाया चकमक ने अप्रैल, 87 के अंक में। इस हाथ में उंगलियों का महत्व तो है ही, सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण है अंगूठा। अंगूठा न हो तो केवल उंगलियाँ उतने काम न कर पातीं जितने हम अंगूठे के सहारे कर लेते हैं।

और फिर जून, 87 का पर्यावरण अंक। इसमें पर्यावरण के महत्व के साथ-साथ अनेक चित्रों द्वारा यह भी बताया गया है कि पर्यावरण को हम किस तरह नष्ट कर रहे हैं। यह आज हमारे देश की ही नहीं, पूरे विश्व की समस्या है।

6 अगस्त, 1945 विश्व भर में उस विनाशलीला के लिए याद किया जाता है जो एटम बम ने जापान में की थी। तभी से एक ओर विश्व की बड़ी शक्तियाँ जहाँ एटम-बम से भी शक्तिशाली हथियार बनाकर बैठी हैं, वहीं एक-दूसरे से वे डरी हुई हैं और धमका भी रही हैं। विश्व शान्ति और मानवता की रक्षा के लिए ऐसे हथियार कितने ख़तरनाक हैं। इसीलिए अब निःशस्त्रीकरण की बात की जाती है। अगस्त, 87 के अंक में इस विषय पर अच्छी चर्चा है।

जैसा कि सभी जानते हैं कि 'चकमक' का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए एकलव्य के देवास केंद्र ने 'समावेश' नाम से एक शिविर आयोजित किया। इसमें सत्तर बच्चों ने भाग लिया। दस दिन के इस शिविर में कई गतिविधियाँ हुईं। जैसे नाटक, सामूहिक गीत, कठपुतली, चित्रकला, मिट्टी के खिलौने, प्रयोग आदि। फिर 'चकमक' के अक्टूबर, 87 के अंक में इस शिविर की एक विस्तृत रपट प्रकाशित की गई। इस अंक को पढ़कर अनिल राठौड़ ने चुरू राजस्थान से लिखा *'आम आदमी तक विज्ञान को पहुँचाने के लिए आवश्यक है कि 'समावेश' जैसे शिविर भारत के हर शहर–गाँव में लगाए जाएँ।'* चकमक का 'समावेश' अंक बहुत सार्थक रहा।



'चकमक' का चौथा साल शुरू हुआ तो जुलाई, 88 के अंक में सेंट एक्ज़ूपेरी के फ्रेंच उपन्यास का हिन्दी अनुवाद 'नन्हा राजकुमार' का प्रकाशन शुरू हुआ। यह बहुत रोचक उपन्यास है जिसमें एक पायलट की भेंट रेगिस्तान में एक नन्हें राजकुमार से होती है। इस उपन्यास को विश्व के करोड़ों बच्चों ने पढ़ा है। चकमक के माध्यम से हिन्दी के पाठकों ने भी इसे पढ़ा और पसंद भी किया। इसी के साथ-साथ गुजराती के प्रसिद्ध बाल साहित्यकार और शिक्षाविद् गिजुभाई की कई रचनाएँ बच्चों को पढ़ने को मिलीं। गिजुभाई बच्चों की दुनिया से ही कथानक उठाते थे और सरल और सुबोध भाषा-शैली में प्रस्तुत कर देते थे।

भूकम्प क्यों आते हैं, उन्हें कैसे नापा जाता है आदि की जानकारी जनवरी, 89 के अंक में दी गई है। अमरीकी वैज्ञानिक चार्ल्स फ्रांसिस रिक्टर ने भूकम्प नापने का पैमाना बनाया था। उसे ही आज भी इस्तेमाल किया जाता है। अख़बारों में तुम पढ़ते होगे कि रिक्टर पैमाने पर 'भूकम्प' कितना डिगरी था। यह उसी पैमाने की संख्या होती है।

निरंकारदेव सेवक, बच्चों के प्रसिद्ध कवि हैं। उनकी एक कविता फ़रवरी, 89 के अंक में छपी है। यहाँ हम उसकी कुछ पंक्तियाँ दे रहे हैं।

अगर हमारे हाथ न होते
तो हम तुम क्या करते?
कैसे रसगुल्ले चम्मच से
उठा उठाकर खाते?
अगर हमारे हाथ न होते
तो सचमुच क्या करते?
हम बकरी की तरह वनों में
घास पत्तियाँ चरते।

अगर हमारे पाँव न होते
तो हम तुम क्या करते?
कैसे घर में चलते फिरते
कैसे बाहर जाते?
अगर हमारे पाँव न होते
तो सचमुच क्या करते?
हम घोंघे की तरह रेंगते
फिरते डरते-डरते!

हम पक्षियों से अपना परिचय बचपन से ही कर लेते हैं। इन्होंने हमें उड़ने की कल्पना तो दी ही साथ ही ये हज़ारों सालों से मानव के मित्र रहे हैं। ये पक्षी फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़ों को खा जाते हैं। गिद्ध, कौवा और चील मरे हुए जानवरों और गंदगी खाकर पर्यावरण को शुद्ध रखने में मदद करते हैं। पक्षियों पर यह तमाम रोचक जानकारी चकमक ने मार्च, 89 में प्रस्तुत की।

पाँचवे वर्ष की शुरूआत चकमक ने पतंग उड़ाकर की। सचमुच उसकी गौरवशाली पतंग जिस तरह इतने वर्षों तक उड़ती आई है – वह बड़े महत्व की बात है। इसका सीधा अर्थ यह भी है कि बच्चों ने चकमक को निरन्तर सराहा और पसंद भी

किया। पतंग की कहानी को बड़े विस्तार से देकर, पतंगों के त्यौहार की चर्चा बड़ी रोचक बन पड़ी है।

फिर आया अगस्त अंक। पन्द्रह अगस्त का दिन किसे नहीं मालूम? पर सफ़दर हाशमी ने एक बच्चे के ज़रिए कहा -

हमसे कोई पूछे, 'भैया
आज़ादी क्या होती है!'
हम कह देंगे उस दिन सबकी
पूरी छुट्टी होती है!

इसी अंक में काँच और चीनी मिट्टी के बर्तन की सचित्र कहानी भी है।

अक्टूबर, 89 अंक से दो नए धारावाहिक शुरू हुए। एक तो जूलेवर्न के अंग्रेज़ी उपन्यास का हिन्दी अनुवाद 'भूगर्भ की यात्रा' और दूसरा 'नन्हें गुदड़ी लाल के साहसिक कारनामे।' एक छोटी सी लड़की के पास कपड़े का एक नन्हा गुड्डा था – गुदड़ीलाल। यह गुदड़ीलाल एक बार नाराज़ होकर घर से चला गया और फिर उसके साथ क्या हुआ, यही रोचक कहानी इस उपन्यास में दी गई। यह मूलतः चीनी उपन्यास है।

दिसम्बर अंक में एक आदिवासी बालक की एक अद्‌भुत कहानी दी गई है। चेन्दू ने एक बाघ को पाला था जो उसके साथ पालतू कुत्ते जैसा रहता था। प्रेम की शक्ति क्या होती है, इसे इस कहानी से समझा जा सकता है।

चकमक में जहाँ रोचक वैज्ञानिक लेख, कहानियाँ, कविताएँ और ज्ञान-विज्ञान की सामग्री प्रकाशित होती है, वहीं इसमें समय-समय पर नाटक भी प्रकाशित होते हैं। 'विज्ञान की अदालत में मानसून' एक ऐसा ही नाटक है जो यह सिद्ध करता है कि वैज्ञानिक विषयों को रोचक नाटक-शैली में भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

सन् 91 के जनवरी अंक में कैलेन्डर की कहानी सचित्र दी गई है और यह बताया गया है कि ये तारीखें, तिथियाँ, सन्-संवत क्यों और कैसे बने हैं। इसी अंक में नारायण लाल परमार की 'बारहमासी' कविता भी अच्छी है।

कैलेन्डर अगर दिन और तिथियाँ बताता है तो उसकी बहन घड़ी, समय और उसके हिस्सों को बताती है। फरवरी, 91 के अंक में 'समय की माप - परछाई से परमाणु तक' बहुत ही रोचक लेख है। साथ में एक मज़ेदार कहानी भी है – 'घड़ियों की हड़ताल'। सचमुच अगर संसार भर की घड़ियाँ काम करना बन्द कर दें तो क्या हो?

पानी के जहाज़ प्राचीन काल से बनते रहे हैं। किंतु आधुनिक काल में तो बहुत बड़े-बड़े जहाज़ बनने लगे हैं। जहाज़ों के निर्माण की कहानी के साथ-साथ उनके विविध प्रकारों की जानकारी भी प्रस्तुत की गई है। इसके साथ यह भी बताया गया है कि पानी में लकड़ी क्यों तैरती है? अप्रैल, 91 का अंक इसी विषय पर केन्द्रित है।

अपनी प्रयोगशाला

कभी-कभी कुछ ऐसी बातों की ओर हम सोचते भी नहीं जो लगती तो बहुत सहज हैं, पर उनके वैज्ञानिक कारण भी होते हैं। अब नींद या सपनों या खर्राटों की बात लें। इनसे तो हम रोज़ ही मिलते हैं। भला इनमें अजीब बात क्या हो सकती है? पर नहीं, इनके भी वैज्ञानिक कारण होते हैं और वही कारण अगस्त, 91 के अंक में बताए गए।

'दुनिया पैसे की है' लोग अक्सर कहते हैं, आज पैसा या धन-दौलत न हो तो कोई जी नहीं सकता। क्या है ये पैसा? प्राचीनकाल में इसका क्या रूप था और आज करेंसी नोटों की क्या कहानी है? पैसे से जुड़ी तमाम बातों का चित्रमय विवेचन प्रस्तुत किया गया चकमक सितम्बर, 91 में।

यों तो चकमक का हर अंक बच्चों की अपनी रचनाओं के स्तम्भ 'मेरा पन्ना' से शुरू होता है किन्तु बच्चों की रचनात्मकता बढ़ाने और उन्हें अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से जनवरी 1992 का अंक 'मेरा पन्ना अंक' कहलाया। इसमें

सभी रचनाएँ, चित्र, कवर, आदि बच्चों द्वारा बनाए गए हैं।

होली के हुड़दंग में बच्चे सबसे आगे रहते हैं होली कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे मनाई जाती है- यह तो मार्च, 92 के अंक में बताया गया। साथ ही होली के रंगों से होने वाली हानियों के प्रति भी सावधान किया गया। हरिकृष्ण तैलंग की 'होली का हौवा' एक मज़ेदार कहानी भी है।

हम चूहों की कहानियाँ तो ख़ूब पढ़ते सुनते हैं, उन्हें चतुर भी मानते हैं पर चूहे कितना नुकसान कर सकते हैं - इसका अनुमान लगाने पर वे हमें मित्र नहीं शत्रु नज़र आते हैं। मई, 92 का अंक चूहों को समर्पित है। साथ में प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की एक कहानी भी है 'चूहा और मैं'।

जुलाई, 92 का अंक कुछ कठिन और शुष्क विषय 'ज्यामिति' को लेकर आया। लेकिन इस विषय को इतनी रोचक सामग्री और चित्रों के साथ प्रस्तुत करके सम्पादक ने कमाल कर दिया। इस अंक का मुखपृष्ठ भी ज्यामिति-आकारों पर आधारित है।

कभी-कभी बड़े लोग ऐसे प्रश्नों से झुंझला उठते हैं जब बच्चे उनसे पूछते हैं- फूल कैसे खिला, फूल में रंग कहां से आया? फूल में फल कैसे लगा? लेकिन यह कहानी बड़ी रोचक है, साथ ही वैज्ञानिक भी। अगस्त, 92 के अंक में 'फल से फूल' तक की सारी बातें चित्रों सहित बताई गई हैं।

हम जिस काग़ज़ पर लिखते हैं, जिन चीज़ों से लिखते हैं - उनके बारे में सोचते भी कम हैं, जानते भी कम हैं। इसके बारे में सितम्बर, 92 के अंक में विस्तार से बताया गया कि लिखने की शुरूआत कैसे हुई।

मार्च, 93 अंक से गुलज़ार का 'जगलनामा' का प्रकाशन शुरू हुआ। यह एक रोचक और कल्पनाशील बनाने वाली कथा है। अप्रैल में 'बिना हिसाब का एक दिन', योगेन्द्र दवे का मज़ेदार नाटक छपा। जुलाई में 'मनुष्य महाबली कैसे बना' एक और रोचक धारावाहिक शुरू हुआ।



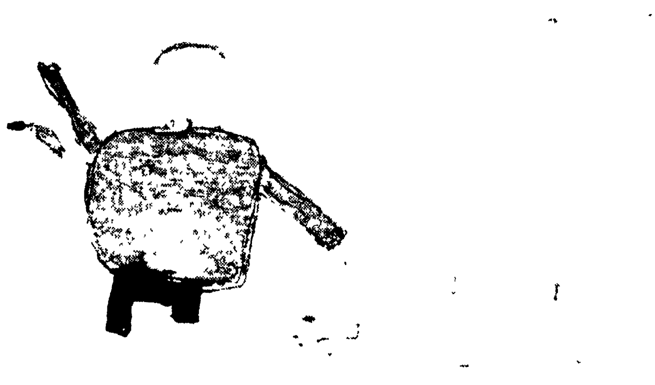
चकमक की सौ मील की यह यात्रा पढ़कर सहज ही देखा जा सकता है कि इसने अपनी झोली में कितने ही कीमती सुन्दर और अजीबोगरीब रत्न भरे हैं। उसकी इस सौ मील की यात्रा से एक बात यह स्पष्ट होती है कि 'चकमक' की दृष्टि न केवल वैज्ञानिक और पैनी है, बल्कि व्यापक भी है। सबसे अच्छा इसका गुण है कि यह अपने उद्देश्य को कभी नहीं छोड़ती। दूसरी बात है आज जबकि बच्चों की पत्रिकाओं का चलना मुश्किल हो रहा है, बड़े-बड़े प्रकाशन समूह– बाल पत्रिकाएँ बन्द कर रहे हैं, ऐसे में 'चकमक' बिना विज्ञापनों का सहारा लिए सफलता की मंज़िलें पार कर रही है, हालांकि यह उल्लेखनीय है कि चकमक को काग़ज़ यूनिसेफ़ उपलब्ध करवा रहा है। फिर भी यह बड़े साहस की बात है और 'चकमक' को इसके लिए पूरे साहित्य जगत की ओर से बधाई। इसके साथ ही सौवें मील पर पहुँचने के बाद हार्दिक शुभकामनाएँ भी उसके साथ हैं कि वह आगे की यात्रा में भी इस तरह अनेक रत्नों को चुनकर अपने पाठकों तक पहुँचाए और उनके ज्ञान का खज़ाना भरे, उन्हें दुलराए और उनके विकास में अपना अप्रतिम योगदान दे। ❑❑



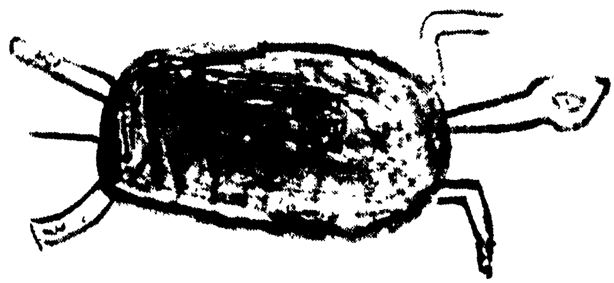
गोपाल अग्रवाल, पटना, बिहार



मनिषा हाटेकर, आठवीं, चाटा पारा, बिलासपुर, म.प्र.

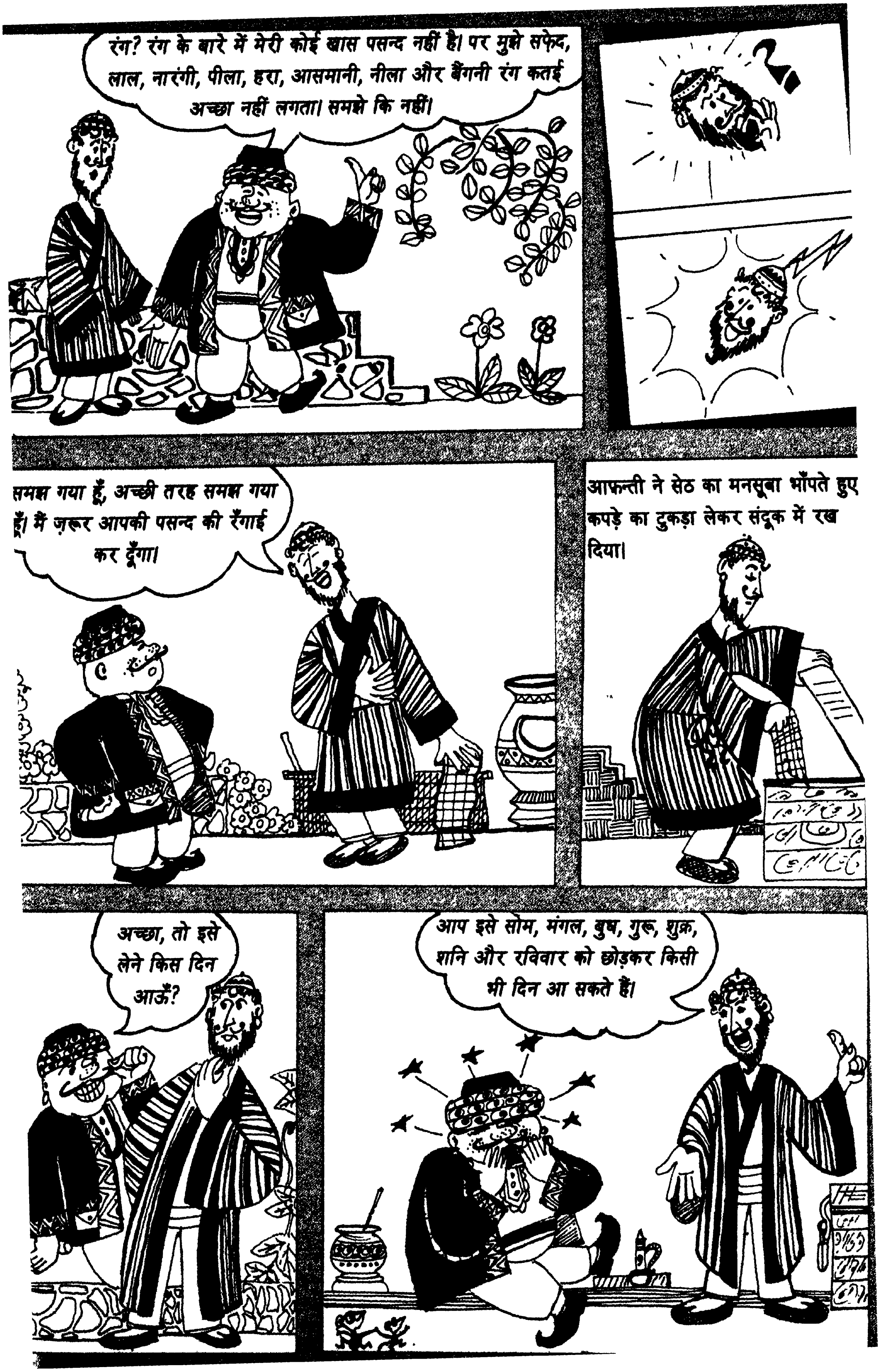


योगेश रघुवंशी, चौथी, हरदा, म.प्र.



नरेन्द्र कुमार, छठवीं, धार, म.प्र.


क़िस्सा आफन्ती का
आफन्ती ने एक छोटी-सी रँगाई वर्कशाप खोली और गाँववासियों के कपड़े रँगना शुरू कर दिए।
सब लोग उसकी रँगाई की तारीफ़ करने लगे।
यह देखकर गाँव के एक सेठ को जलन होने लगी।
वह आफन्ती को परेशान करने के इरादे से कपड़े का एक टुकड़ा लेकर आफन्ती की वर्कशाप में पहुँचा।
आफन्ती, यह कपड़ा अच्छी तरह रँग दो। मैं देखना चाहता हूँ तुम्हारा हुनर कैसा है।
सेठ जी आप कैसा रंग चाहते हैं?


रंग? रंग के बारे में मेरी कोई ख़ास पसन्द नहीं है। पर मुझे सफ़ेद, लाल, नारंगी, पीला, हरा, आसमानी, नीला और बैंगनी रंग कतई अच्छा नहीं लगता। समझे कि नहीं।
समझ गया हूँ, अच्छी तरह समझ गया हूँ। मैं ज़रूर आपकी पसन्द की रँगाई कर दूँगा।
आफ़न्ती ने सेठ का मनसूबा भाँपते हुए कपड़े का टुकड़ा लेकर संदूक में रख दिया।
अच्छा, तो इसे लेने किस दिन आऊँ?
आप इसे सोम, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र, शनि और रविवार को छोड़कर किसी भी दिन आ सकते हैं।



वो आई गाड़ियाँ

वो आई गाड़ियाँ !
वो आई गाड़ियाँ !

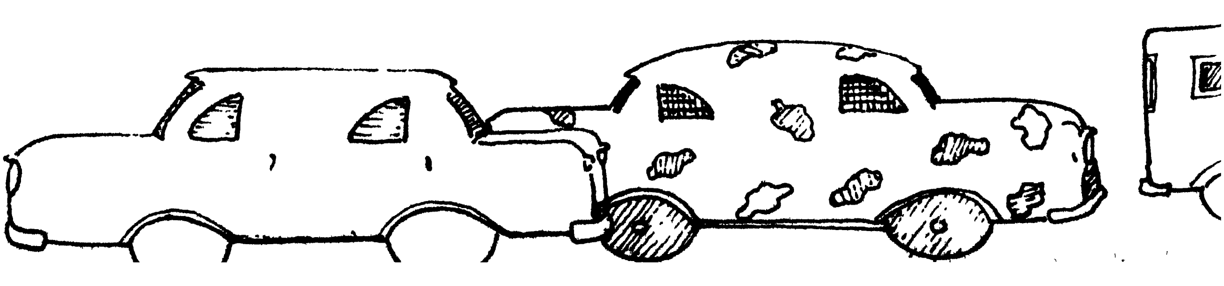
बत्ती जो हो गई हरी
वो आई गाड़ियाँ ! वो आई गाड़ियाँ !

पुलकी खिड़की पे खड़ी
वो आई गाड़ियाँ ! वो आई गाड़ियाँ !

पुलकी है बदमाश बड़ी
खींच लाई कुर्सी
खिड़की पे जा चढ़ी

ओ हो हू हा
ऊँची मंज़िल से चीखे
पुलकी बार-बार
नीचे हल्ला-गुल्ला
दौड़ें खुल्लम-खुल्ला
रंग-रंग की कार

बहुत कहा मत करो शोर
पुलकी न मानी न मानी
रही अड़ी की अड़ी
वो आई गाड़ियाँ ! वो आई गाड़ियाँ



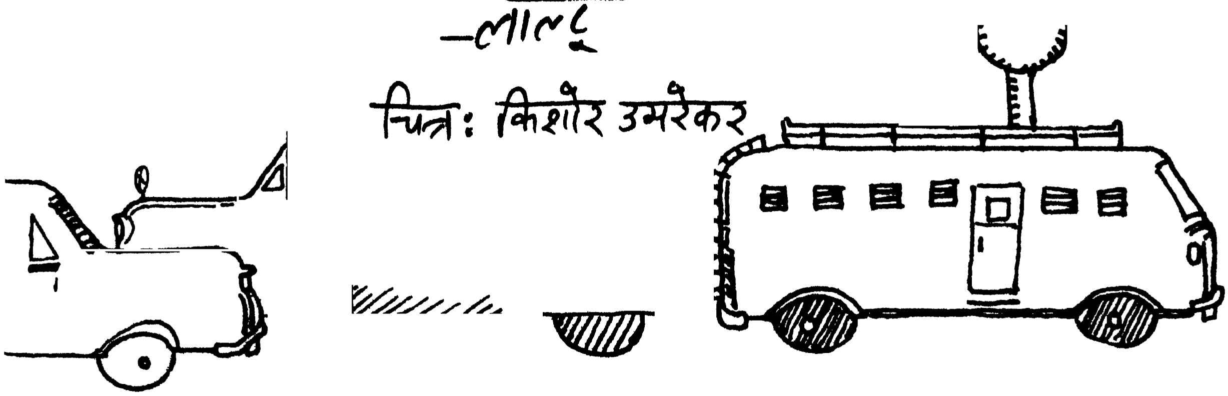


अब बत्ती हो गई लाल
कैसा हुआ कमाल
छोटी गाड़ी, बड़ी गाड़ी
लाल गाड़ी, पीली गाड़ी
हल्की गाड़ी और ट्रक भारी
रुक गईं सारी की सारी

कुर्सी पर उतारे पैर, फिर छलांग मारी
तब तक हरी बत्ती हो गई फिर से -
और फिर...
वो आईं गाड़ियाँ। वो आईं गाड़ियाँ!

—लालटू

चित्रः किशोर उमरेकर





पानी का प्रदूषण

यह बात हमारे देवास के मीठा तालाब की है, जो कि गर्मियों में अक़्सर सूख जाता है। उस समय लोग इसमें पशु चराते हैं और बच्चे इसमें क्रिकेट खेलते हैं। आजकल यह बारिश के पानी से लबालब भरा हुआ है। एक दिन बारिश रुकी तो हमारा मन तालाब देखने को हुआ।

हम वहाँ गए तो वहाँ का दृश्य ख़ूब अच्छा लग रहा था। घने हरे-हरे पेड़। चारों तरफ हरियाली और बीच में तालाब। शहर के शोर-शराबे से दूर। वहाँ पर और भी कई परिवार पिकनिक मनाने के लिए आए हुए थे।

वहाँ का दृश्य दूर से अच्छा लग रहा था। लेकिन जब पानी को प्रदूषित होते देखा तो बिलकुल अच्छा नहीं लगा। वहीं पर धोबी कपड़े धो रहे थे, जो साबुन का गन्दा पानी था वह तालाब में जा रहा था। और वहीं पर लोग अपने वाहन जैसे ट्रक, टेम्पो, जीप और स्कूटर आदि धो रहे थे। वाहनों का तेल पानी के ऊपर तैर रहा था। उसी में भैंसें बैठी थीं। उसी पानी में बच्चे नहा रहे थे। यह प्रदूषित पानी उनकी बीमारियों का कारण बन सकता है।

❑ चित्र एवं लेख - स्वाति त्याग, छठवीं, देवास, म. प्र.



सिखा कहार, चौथी, सुखतवा, होशंगाबाद, म.प्र.

यह कैसा इनाम?

एक दिन हमारी कक्षा में गणित के सर ने एक सवाल पूछा। पूरी कक्षा में केवल मैंने ही सही उत्तर दिया। मैं बहुत खुश था कि सर मुझे शाबाशी देंगे। सर मेरे उत्तर से खुश तो हुए पर उन्होंने मुझसे कहा कि चलो सब लड़कों को एक-एक चाँटा लगाओ। मैं डर गया मैंने कहा कि मैं चाँटा नहीं लगा सकता। मुझे मालूम था कि स्कूल के बाहर मुझे सब मिलकर मारेंगे। फिर अपने सहपाठियों को इस बात पर मारना मैं अच्छा भी नहीं समझता था। सो मैंने कह दिया, "सर मैं चाँटा नहीं लगा सकता।"

सर ने लाल-लाल आंखें निकालकर कहा, "अच्छा तू चाँटा नहीं लगा सकता तो आजा मैं लगाना सिखाऊँ।"

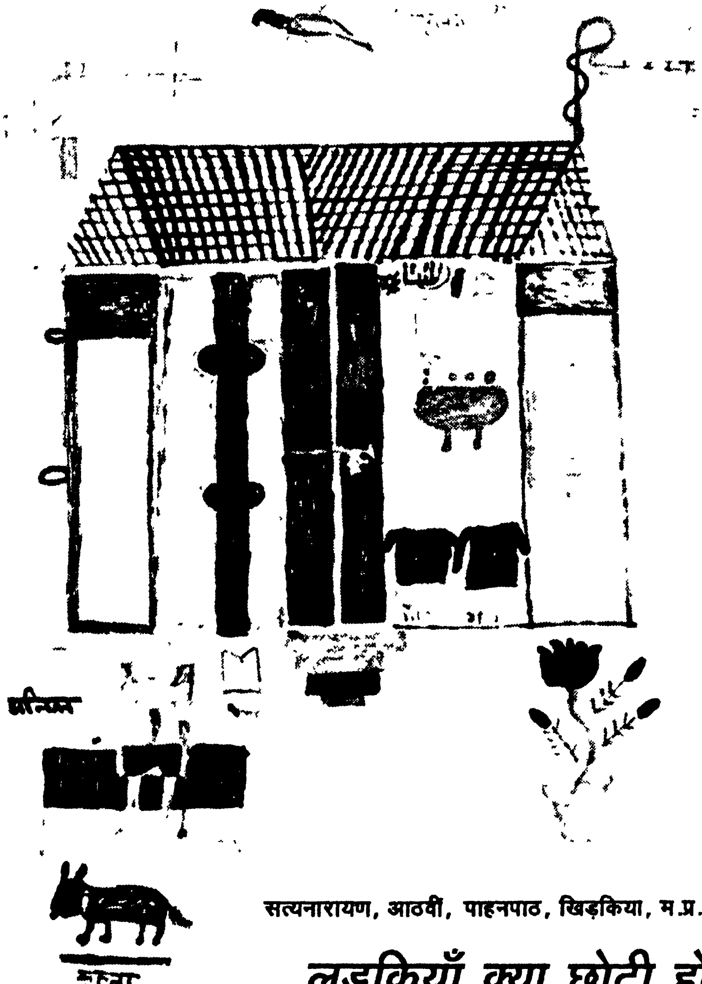
यह कहकर उन्होंने मेरे गाल पर पूरे ज़ोर से थप्पड़ मार दिया। मेरे आँसू निकल पड़े। पूरे दिन मुझे इस बात का दुख होता रहा कि मेरे सही जवाब का इनाम क्या बस यह थप्पड़ ही था?

❑ विवेक कुलश्रेष्ठ, सातवीं, ग्वालियर, म.प्र.

बच्चे बड़े सयाने

अब के बच्चे बड़े सयाने,
गाते हैं टी.वी. के गाने।
उन्हें न भाते दूध बतासे,
चाकलेट के बिना रुआँसे।
अब नहीं खेलते कोई खेल,
उन्हें चाहिए सिर्फ़ टी.वी.।
नहीं खो-खो अथवा कबड्डी,
पढ़ना लिखना आती सुस्ती।
अब के बच्चे कितना जाने,
अब के बच्चे क्विज़ को मानें।
अब के बच्चे नहीं हैं भोले,
अब के बच्चे जगत टटोलें।

❑ गीता सोलंकी, बारहवीं, कुक्षी, धार, म.प्र.



सत्यनारायण, आठवीं, पाहनपाठ, खिड़किया, म.प्र.

लड़कियाँ क्या छोटी होती हैं?

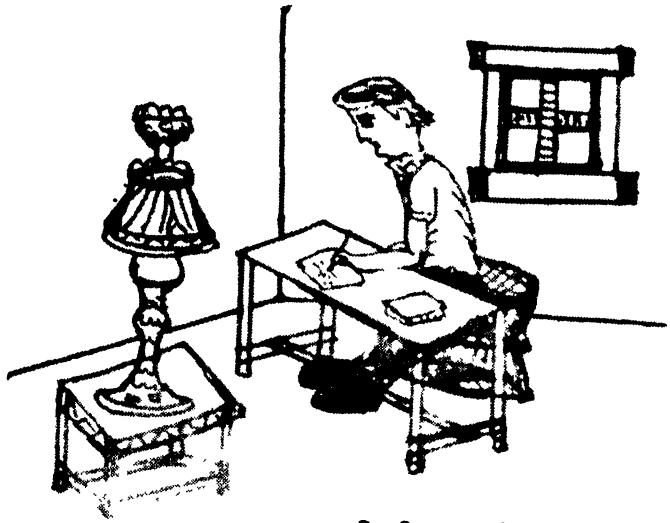
लड़कियाँ क्या घर में कपड़े धोएँ, बर्तन माँजें, खाना पकाएँ यही काम है उनका। क्या वो पढ़-लिखकर बड़ा काम नहीं कर सकतीं। अगर उन्हें काम देंगे तो वह काम में मन लगाती हैं। अगर उन्हें काम से रोककर बचपन से पढ़ाई के लिए कहो, तो वो पढ़ाई करेंगी। फिर उनको पढ़ाई से नई-नई बातें पता लगेंगी। फिर उनको अख़बार पढ़ने को बोलो। फिर उनसे पूछो, तुम्हारी रुचि किसमें हैं। मान लो उसने कहा, चित्र में। उससे कहो जब पढ़ाई ख़त्म हो जाए और मन करे तो चित्र बना लेना। लड़कों को तो ऐसे ही समझाते हैं। लड़कियाँ भी मनुष्य हैं।

वैसे एक बात तो है आजकल ऐसा नहीं होता है। आजकल लड़कियाँ भी पढ़ने लगीं हैं। पर कुछ लोगों के यहाँ यदि लड़का होता है तो बड़े प्यार से रखते हैं। लड़की हो तो डाँटना, मारना और काम कराना।

मैं भी लड़की हूँ पर मेरे माँ-बाप ऐसे नहीं हैं। अगर ऐसे ख़राब होते तो क्या जो मैं लिख रही हूँ, वो भेजने देते? और जिनके ख़राब होते हैं, वो स्कूल तो भेज देते हैं पर घर का काम कराते रहते हैं। बड़े होने पर दहेज़ देकर शादी कर देते हैं। ❑ टीना मिश्रा, चौथी, भोपाल, म. प्र.

इम्तहान

मैं इम्तहान! मैं इम्तहान!
मैं बड़ा बहादुर
बड़ा भयंकर पहलवान
मैं इम्तहान! मैं इम्तहान!
जो मुझसे डरते हैं उनको डराता हूँ
झटका देकर मैं नीचे उन्हें गिराता हूँ
जितना घबराते उतना उन्हें डराता हूँ
मैं बड़ी भयंकर अपनी शक्ल बनाता हूँ
ऐसे लोगों को कर देता परेशान
मैं इम्तहान! मैं इम्तहान!



बसन्त तिवारी, पंद्रह वर्ष, भोपाल, म.प्र.

❑ निर्मित कुमार व्यास, दसवीं, सैलाना, रतलाम, म.प्र

हम ट्रेकिंग करने गए

हम कल ट्रेकिंग (पहाड़ पर चढ़ाई) करने गए। बड़ा ही मज़ा आया। लेकिन मम्मी, नानी व मामी की डॉट खानी पड़ी। जब भी हम कहीं जाते हैं अल्मोड़ा में, और देर से आएँ तो मम्मी डॉटती हैं। लेकिन नानी के यहाँ आकर तो हमें तीनों की डॉट खानी पड़ी। बहुत गुस्सा आया हमें। अब अपनी असली घटना शुरू करती हूँ।

जब हम कल घर से गाड़ को चले तो अपनी माँ से कह गए कि हम आठ-साढ़े आठ बजे तक आएँगे। माँ ने शायद उसे मज़ाक में लिया। हम चल दिए। हमने रास्ते में घास काटती एक छोटी-सी लड़की को देखा। वो गाना भी गा रही थी। हमको देखते ही उसने फ़िल्मी गाना, गाना शुरू कर दिया और ज़ोर-ज़ोर से गाने लगी।

फिर हम आगे चले। हमने छोटा-सा नौला देखा। उसे देखकर हम आगे चल दिए। फिर हमने घास काटती हुई दो औरतें देखीं। हमने उनसे पूछा गाड़ जाने का रास्ता कहाँ से है। तो वो हिचककर बोली - उधर से। हम फिर आगे चल दिए। वो इसलिए हिचककर बोल रही थीं क्योंकि रास्ता बन्द था। हमने रास्ता खोल दिया और गाड़ पहुँच गए। फिर हम वहाँ से आगे निकले और हौज में पहुँचे। हम कहीं पर नहीं रुके। फिर हम स्कूल पहुँचे। वहाँ से हम चीड़ के नंगेल में फँस गए। मुश्किल से मेरे पापा ने रास्ता खोजा। हम बहुत ऊपर पहुँच गए थे। हमें रात हो गई थी।

हमारे साथ हमारा कुत्ता विशी भी था। चन्द्रमा ने हमको रास्ता दिखाया। हम गाँव में पहुँच गए। हमारा घर आ गया। घर पहुँचकर पंगेबाज़ी हुई। मेरे पापा ने कहा किसी से मत बोलना और हम नहीं बोले।

❑ अनुरुचि पाण्डे, नौ वर्ष, जाखन देवी, अल्मोड़ा, उ.प्र.



सैर



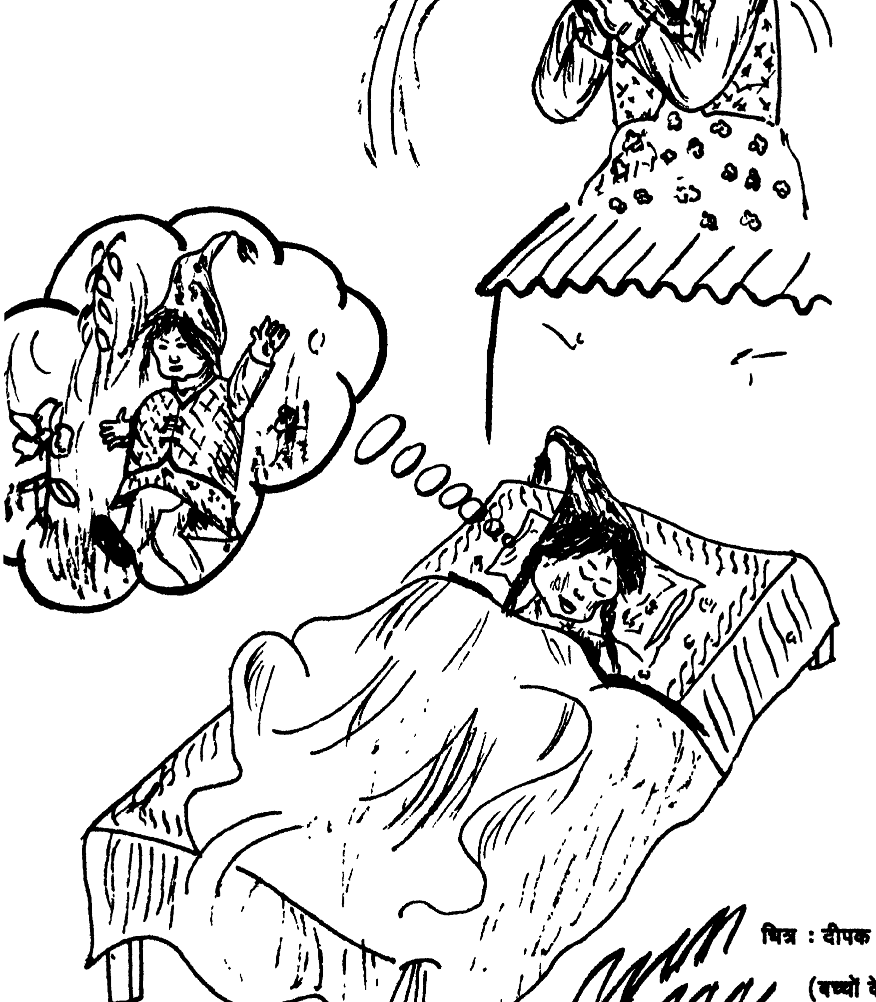
इक सर्दी की दोपहर को
निकल पड़ी मैं सैर को
झूम झूम कर मैं जाती थी
गुन गुन गाना मैं गाती थी
पर अरे-ये देखो कैसा चक्कर
खोला जूता मैंने लपककर
झाँका जब जूते के अन्दर
उसमें था मोटा सा कंकर
कंकर जी को बाहर निकाला
जूतों को पैरों में डाला





और सर्दी की दोपहर को
चली मैं फिर से सैर को
झूम झूम कर मैं जाती थी
गुन गुन गाना मैं गाती थी
पर अरे-ये फिर से कैसा चक्कर
खोला जूता मैंने लपककर
जूते के अन्दर जब झाँका
बॉल छुपा था उसमें बाँका
बाँके बॉल को बाहर निकाला
जूते को फिर पैर में डाला





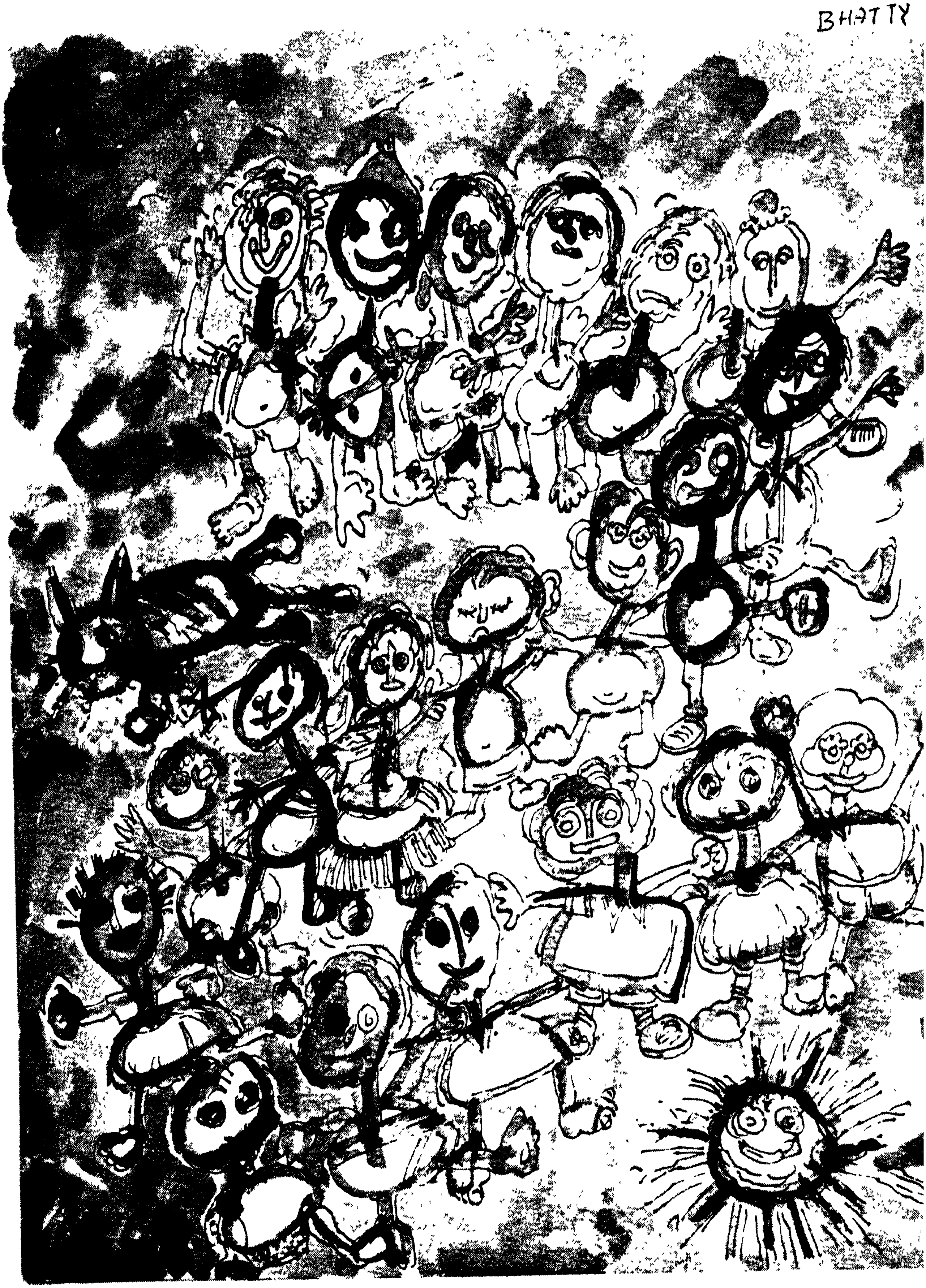
फिर सर्दी की दोपहर को
चली मैं आगे सैर को
झूम झूम कर मैं जाती थी
गुन गुन गाना मैं गाती थी
पर अरे-ये फिर से कैसा चक्कर
खोला जूता मैंने लपककर
खिसियाकर जूता जो टटोला
तो इक कीड़ा उस में से बोला
बाहर निकाल उन्हें किया नमस्ते
मैं रोती थी पर वो थे हँसते

फिर उस सर्दी की दोपहर को
भूलभाल कर सैर को
बुड़बुड़ करती घर को आई
बिस्तर पकड़ा ओढ़ी रज़ाई
गहरी नींद आई दोपहर को
और मैं सपने में गई सैर को

❑ **कमला भसीन**

चित्र : दीपक विश्नोई, सोलह वर्ष, भोपाल, म. प्र.

(बच्चों के लिए गाने वाले एक उत्तर-अमरीकी गायक राफ़ी के एक अंग्रेजी गीत पर आधारित।)



हरयन्दनसिंह भट्टी, भोपाल, म.प्र.

सृजन–93' में जिन बच्चों ने भाग लिया, उन सभी के नाम यहाँ प्रकाशित किए जा रहे हैं। हमने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की है कि कोई नाम छूटे नहीं। इन सभी को चकमक का यह अंक भी डाक से भेजा जा रहा है।

दीपाली देशपांडे, छठवीं, बाग बहरा। सुधीर कुमार, दसवीं, धोवनमाल। **सभी ज़िला रायपुर, म.प्र.।** मनोहर दास वैष्णव, दसवीं, बिंजकोट। राजनदेव महंत, नवमीं, घरघोड़ा। किरण कुमार बनज, चौदह वर्ष, आरा। प्रीति शर्मा, छठवीं, सिंगीबहार। कल्पना मिश्रा, आठवीं, इचकेला। अभिमन्यु प्रसाद नन्दें, चौदह वर्ष, बालाझट। श्रद्धा, दस वर्ष, कविता, नौ वर्ष, गजमा, रायगढ़। **सभी ज़िला रायगढ़, म.प्र.।** कमलेश राठौर, अभीजित, छठवीं, नामली। मनोज बैरागी, पंचेड़। **सभी ज़िला रतलाम म.प्र.।**

सुशीला पांडेय, उदयपुर। सैयद फिरोज अली, सोलह वर्ष, अम्बिकापुर। श्याम किशोर, तेरह वर्ष; ज्योति दुबे, सातवीं, रामानुजगज। बहादुरसिंह, सातवीं, देवगढ़। सुशील कुमार रिंह, आठवीं, सोनहत। आकाश जैन, सातवीं, देवाढांढ। श्याम किशोर, सातवीं, आरागाड़ी। संस्कृति उपाध्याय, तीसरी, मनेन्द्रगढ़। **सभी ज़िला सरगुजा, म.प्र.।**

दीपक अग्रवाल, ग्यारह वर्ष, अनूपपुर। हेमलता बंजारा, दूसरी, कृष्णा नायक, दसवीं, करपा। उमेश कुमार कचेर, सत्रह वर्ष, मुकेश कुशवाहा, प्रीति कुशवाहा, करकटी। अशोक गुप्ता, दसवीं, भाद। मंजूर अली खां, बारहवीं, गोहपास। **सभी ज़िला शहडोल, म.प्र.।** महेंद्रपालसिंह यादव, दसवीं, नवीनचद्र कुभकार, संदेश आचार्य, नवमीं, सुनील चतुर्वेदी, **शाजापुर, म.प्र.।** दिलीप तोमर, आठवीं, शिवशंकर, पंद्रह वर्ष, बालागुडा। सरिता जोशी, पान विहार। हरिनारायण पंड्या, नरवर। राजनंदनी उपाध्याय, पहली, छायन। ममता, हेमराज, अनिल, भास्कर, प्रतापसिंह, पिंकी, सजू, वर्षा काले, चौथी। दिलीप तोमर आठवीं। शारदा पाँचवीं, सोनू, तीसरी, उज्जैन। **सभी ज़िला उज्जैन, म.प्र.।**

ओंकार प्रसाद डडरोना, ग्यारहवीं, पथरिया। रीतासिह ठाकुर, अमितसिह ठाकुर, पाँचवीं, मल्हार। राजेश कुमार कँवर, दूसरी, कटघोरा। शैलेन्द्र चतुर्वेदी, चौदह वर्ष, पेन्ड्रा। रामानन्द मानिकपुरी, ग्यारह वर्ष, केन्दा। सन्तोष कुमार यादव, दसवीं, कोरकोमा। शीतल खरवा, आठवीं, मैसमा। मो मुस्तफा, पाँचवीं, चाँपा। नितिन हाटेकर, पन्द्रह वर्ष, आठवीं, बिलासपुर। **सभी बिलासपुर, म.प्र.।** आशीष कुमार विश्वकर्मा, आठवीं, **छिन्दवाड़ा, म.प्र.।** राघवेन्द्र गर्ग, पप्पी जैन, तेरह वर्ष, दिव्यवाणी, आठवीं, कैलाश रैकवार, आठवीं, अभिषेक खरे, छठवीं, मडदेवरा। वैशाली सिंघई, ग्यारहवीं, जसकीर्ति सिघई, दूसरी, घुवारा। **सभी ज़िला छतरपुर, म.प्र.।**

सचिन भल्ला, सोलह वर्ष, शिवेन्द्रसिह सिसोदिया, चौथी, माधवी ठाकुर, ग्यारह वर्ष, भिलाई। रीना सोनबरसा, आठवीं, बालोद। सनक कुमार साहू, पेंवरो। अनुरागसिह राहुल, तेरह वर्ष, दुर्ग। **सभी ज़िला दुर्ग, म.प्र.।**

शोभा श्रीवास्तव, बारह वर्ष, सुभाष चन्द्र श्रीवास्तव, पाँच वर्ष, निरजन कुमार, पन्द्रह वर्ष, अरविन्द कुमार श्रीवास्तव, नौ वर्ष, सभी उँचिया। **सभी ज़िला दतिया, म.प्र.।** अख़्तर, तेरह वर्ष, जगदलपुर। पियूषकाँत नेताम, कोपरा, केशकाल। विजयेन्द्रसिह ठाकुर, आठवीं, सिगनपुर। रविशकर देसीज, बारहवीं, मददेड। मासाराम, बारह वर्ष, गुदमा, बीनापुर। मुकेश सुराना, सातवीं, विजयकुमार कुजरू, आठवीं; गुलाब राय कुजाम, आठवीं, समुखराव, आठवीं, कोंडागाव। ख्याति, रश्मि, पाँचवीं, रेणुप्रभा, तीसरी, सुदीप साखा, छठवीं, नारायणपुर। **सभी ज़िला बस्तर; म.प्र.।**

जगदीश कुमार उइके, तेरह वर्ष, मजूलता, नौवीं, रामसिह उइके, पन्द्रह वर्ष, सावलमेंडा (मैंसदेही)। सुरेन्द्र राजपूत, बारह वर्ष, सिलपट्टी, शाहपुर। शम्भूदयाल सहेरिया, बारहवीं, घोडाडोंगरी। लवलेश कुमार लोखन्डे, ग्यारहवीं, चिल्लकापुर (मैसदेही)। शिशिर कुमार तिवारी, चौथी, खापा। माधुरी ठाकुर, चौथी, बैतूल। **सभी जिला बैतूल, म.प्र.।**

सुनील शर्मा, आठवीं, वेदनिधीश आर्य, दसवीं, नेहा यादव, दूसरी, अशिता श्रीवास्तव, पाँच वर्ष, आदित्य अभिनव श्रीवास्तव, ग्यारह वर्ष, ऋतु चौबे, ग्यारह वर्ष, अमित प्रकाश खरे, सातवीं, राहुल गोरखेडे, पाँचवी, शिखा सक्सेना, बारह वर्ष, रमेश मोरे, आठवीं, नेहा माहेश्वरी, सातवीं, रजनी ढोक, छठवीं, रानी, पाँचवीं, शैलेन्द्र सिह, पन्द्रह वर्ष। **सभी भोपाल, म.प्र.।**

स्वाति चौहान, सातवीं, सोनपुरी। रविशकर सिवने, चौदह वर्ष, राजू बानखेडे, दस वर्ष, कलेगाँव। राजेश कुमार, आठवीं, बैहर। कैलाशचन्द्र, दसवीं, चन्दना। राजेश कुमार, आठवीं, दोरा। **सभी ज़िला बालाघाट, म.प्र.।** सचिन पुष्प त्रिवेदी, सोलह वर्ष, सौरभ पुष्प त्रिवेदी, दसवीं, चन्देरी। **ज़िला गुना म.प्र.।**

सतीश शर्मा, सोलह वर्ष, पुरूषोत्तम शर्मा, पन्द्रह वर्ष, पिपलरौंवा। विनित थापा, आठवीं, मवदिया। जीवनसिह सिसौदिया, दसवीं, निपानिया हूर हूर। विजय कुमार जायसवाल, नवमीं, हाटपीपल्या। ब्रजकिशोर वर्मा, पन्द्रह वर्ष, देवली। मुकेश गूजेबार, तेरह वर्ष, राकेश माली, तीसरी, देहरिया साहू, महेन्द्र सिंह, अशोक, आठवीं। अर्जुनसिंह दिनेश पाटीदार, गजानंद, रंजना वर्मा, पाँचवीं। अनुसूया पाटीदार, असलम खाँ, मुकेश पाटीदार, भँवरसिह, कृपाण गिरि गोस्वामी, छठवीं। भागवन्ता पाटीदार, अर्चना वर्मा, उदय कुमारी; तीसरी। उमा कुमारी, सतीश पाटीदार, दूसरी। सभी मानकुण्ड। एम आर. के. पेंटर, राजेन्द्र वर्मा, रामनिवास, उमाशंकर, सुनीता यादव, अमित माछिवाल, विनोद यादव; छठवीं। मनोज यादव, आठवीं। सभी सतवास। अमेयकान्त, छठवीं; लाखन सिंह चौहान, सुगन; सातवीं। सभी अरलावदा। राजेश मोटवानी, नवमीं, सचिन जायसवाल, तेरह वर्ष, बाबूलाल रैकवाल, नवमीं, संजय कुमार डागरे, बारह वर्ष, नईम, तेरह वर्ष; अनिल शर्मा; राहुल मिश्र, पाँचवीं, **देवास। सभी ज़िला देवास, म.प्र.।**



मोनू जोशी, सात वर्ष, डाक पत्थर, देहरादून उ. प्र.

धन्नालाल, जमनालाल रायकुँवर, ओमप्रकाश, लक्ष्मीनारायण, रामेश्वर चौधरी, सुरेन्द्रसिंह चौहान, भारतसिह ठाकुर, महेश, भोलाराम कदम, तुलसीराम शरण, भूरालाल रायकुँवर, तेजकुँवर, अर्जुन, शंकर कुमार, शुजालसिंह ठाकुर, महेश कुमार, नरेन्द्रकुमार, भैरोंसिंह ठाकुर, मुकेश पँवार, मुकेश चौहान, दिलीपसिंह ठाकुर, विजयसिंह भाटी, अजय कुमार गुजरे, राकेशसिंह ठाकुर, **सभी कक्षा छठवीं**। कृष्णासिंह ठाकुर, रामचन्द मकवाने, राकेश कदम, जितेन्द्र शर्मा, संजय बारोड़, **सभी कक्षा सातवीं**। लक्ष्मीनारायण चावड़ा, ग्यारहवीं, **सभी नौगाँव**। सीमा पाटीदार, छठवीं, संगीता पाटीदार, बारह वर्ष; सागोर। शिवाजी राव निरगुणे; मोनिका, आठवीं, कोमड़ा बारवल। अरूण अवस्थी, ग्यारह वर्ष, बगड़ीपुरा। गुणवन्तसिंह, जेतपुरा। डूंगरसिंह, छठवीं, डावरी। शगुफ़्ता कुरैशी, आठवीं; प्रेमलता राणा, छठवीं; मानखिडकी। वर्षा कुमारी मकवाना, आठवीं; पुष्पा मकवाना, नवमीं, जूनावौंजी। रश्मि शर्मा, ग्यारह वर्ष, सुन्द्रैल। प्रदीप कुमार कनेरा, पन्द्रह वर्ष, बदनावर। कृष्णपाल सिंह बोदड़, पड़ियाल। प्रभा भुवेल, तेरह वर्ष; धरमपुरी। राजेश जाट, चन्द्रशेखर पाटीदार, शिवराम, जयराम पाटीदार, दसवीं, विजय पाटीदार; खेमराज, कमल जाट, आठवीं, सिरसी। ज्योति पाचाल, रेखा नागर, दसवीं, सविता वारिया, सातवीं, निहारिका जोशी, बारहवीं, गीता चौहान, दसवीं, कुक्षी। संजय कुमार, वाहिद मोहम्मद, इंदरसिंह, महादेव चौहान, शेरसिंह, राखी कौशल, पूर्वी जैन, विनोद चौहान, रिंकू यादव, राकेश चावड़ा, आशीष राठौर, पर्वतसिंह सोलंकी, **सभी कक्षा छठवीं**। डाली ठाकुर, कविता कौशल, राजू परमार, तृप्ती मंडलोई, संगीता मिश्रा, प्रीति उपाध्याय, सविता रानी, बलवीर सिंह सिसौदिया, कल्पना पाण्डे, कल्पना सोनाने, मुबीना खान, बसन्ती मन्डलोई, तबस्सुम, सीमा राठौर, जितेन्द्र सिह चौहान, विशाल सिंह चौहान, रीना, आशा, रणछौड़, अभिषेक जाट, चेतन बिल्लौरे, विशाल गुप्ता, **सभी कक्षा सातवीं**। सीमा अग्रवाल, प्रमिला, इशरत जहाँ, नुसरत बी, गरिमा तिवारी, आशा परमार, अप्सरा खान, पूजा जाट, नीलेश पाटीदार, मनोहरसिंह, डाबर, **सभी कक्षा आठवीं**। निकेश राजे, पन्द्रह वर्ष, नवीन भँवर, पवन परमार, तीसरी, मोंटी शर्मा, चौथी; बरखा कनोजिया, पाँचवीं, श्रुति सोनी, पाँचवीं; वर्षा तिवारी, दस वर्ष; गंगा परमार, बारह वर्ष; विशाल खेमानी, निधि वर्मा, नौवीं; माधुरी चौहान, तेरह वर्ष; नम्रता मोहिने, तेरह वर्ष; प्रीति शर्मा, तेरह वर्ष; लता देवड़ा, ग्यारह वर्ष, बर्षा, बारह वर्ष, संदीप शर्मा, चौदह वर्ष, मीता मोदी; **सभी धार। सभी ज़िला धार, म.प्र.।**

कमलेश कुमार साहू, दस वर्ष; प्रकाशचन्द्र राय; अतुलसिंह पटेल, आठवीं; रामवती, सातवीं; सन्तोष कुमार, चौथी; धनासिंह भलावी, नवमीं; अचरज प्रकाश, दूसरी; सुनील कुमार, नवमीं; रामेश्वर, सातवीं; राजेश कुमार, पाँचवीं; लखनलाल उइके, डोमासिंह, सातवीं; सन्तप्यारी कलेर, नवमीं; सुनीता नागले, दसवीं; महेश कुमार अम्बलकर, छठवीं; कपिल कुमार न्यास, आठवीं; राजुल मालपानी, आठवीं; पिपरिया। सुयश श्रीवास्तव, सात वर्ष; बाबई। रामनिवास, राजेश, सातवीं; जयसिंह राजपूत, छठवीं, मुकेश कुमार गौड़, सातवीं, सुधीर कुमार राठौड़, छठवीं; रमाबाई, सातवीं; अशोक मालवीय, आठवीं; दुर्गा, रूपाबाई, शशि, सरोज, सुनीता, सुनील गौर; सातवीं, चौकड़ी (खिड़किया)। राजेश कुमार, सातवीं; सत्यनारायण, आठवीं, अवधनारायण, नवमीं खिड़किया। पार्वती, सातवीं, छीपाबड़, खिड़किया। अर्जुनसिंह राजपूत, सातवीं, भूरेलाल नागरे, आठवीं; शारदा वामन्य, पाँचवीं; योगेश कुशवाहा, आठवीं; प्रीति वर्मा, ग्यारहवीं; आनन्द पारे, आठवीं; रविन्द्र कुमार मालवीय, ग्यारहवीं; पंकज कुमार कलेर, ग्यारहवीं; मनीष कुमार, सातवीं; रितेश पाटिल, आठवीं; टिमरनी। आरती तिवारी, आठवीं; शोभा नागोरी, सातवीं; विजय, चौथी, स्नेही धीर, दूसरी; अंशुक तिवारी, नवमीं; आनन्द धीर, चार वर्ष, राजाबरारी, टिमरनी। महेन्द्र कुमार पाटिल, तवानगर। वर्षा कहार, पाँचवीं, शिखा कहार, चौथी, सुखतवा। सुभाष कुमार अजने, चारखेड़ा। नीतू अग्रवाल, आनंद पारे, अतुल जोशी, आठवीं, टिमरनी। विशाल कुमार गंगराडे, सातवीं, चारूआ। आलोक गुहा, अनिरूद्ध गुहा, दसवीं; हरदा। अमिता गोस्वामी, सोहागपुर। मुकेश कटारे, आठवी, सिवनी मालवा। विपत भारती गोस्वामी, पन्द्रह वर्ष; रंजना मालवीय, पहली, हिरनखेड़ा। अमितसिंह चौहान, चौदह वर्ष, जलालाबाद, सत्येन्द्र सिंह रघुवंशी, नवमीं, छीपानेर, हरदा। डाली चौरे, छठवीं, सनखेड़ा। चीनू श्रीवास्तव; सोनू श्रीवास्तव, चार वर्ष; बलदेव जुमनानी, तेरह वर्ष; सुयश श्रीवास्तव; रजनीश शर्मा, होशंगाबाद। **सभी ज़िला होशंगाबाद, म.प्र.।**

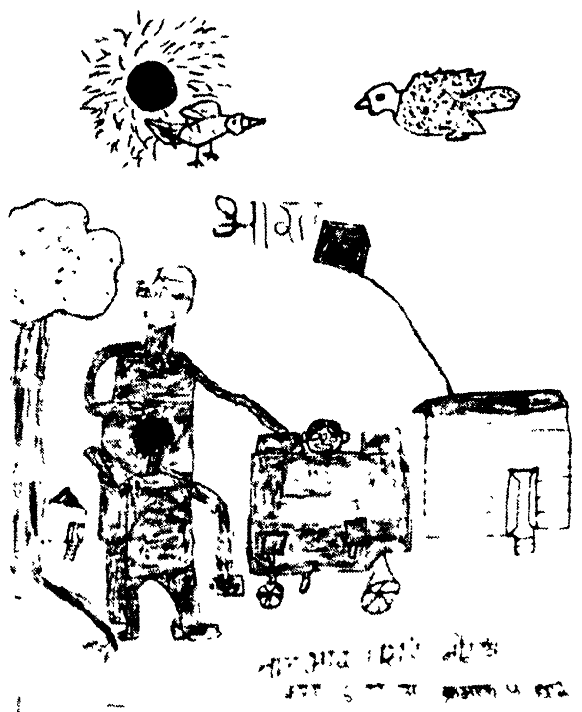
गौरव अग्रवाल, नेहा श्रीवास्तव, मोनिका दवे, जया सिंह, निमिषा रावत, मनमीत टूटेजा, कपिल छाबड़ा, नीतेश तिवारी, सन्जना गर्ग, गौरव जैन, रीपिका अग्रवाल, भारत, अमित गोयल, किरण मेवाड़ा, आनन्द वर्मा, अमृता गोयल, पूनम खत्री, मीना राठौड़, नितिन सोमकुँवर, दीपा खटवानी, नेहा खत्री, नेहा तिवारी, विपुल पाल, विशाल चौहान, कक्षा छठवीं। आशीष कुमार, सातवीं; रूपेश पोखल, दसवीं; आशीष बारह वर्ष। **सभी इन्दौर, म.प्र.।**

पारूल दवे, दूसरी; घनश्याम कुमार ललवानी, छठवीं; अवनीश कुमार मिश्रा, पन्द्रह वर्ष; भारत हासवानी; उज्ज्वल दास, सातवीं; रवीश गुप्ता, छह वर्ष। **सभी जबलपुर, म.प्र.।** दिपेन्द्र चन्द्र चन्दावत, दसवीं, जोबट। जयेश कुमार गहलोत, नवमीं, घटकला। शैलेन्द्रसिंह चौहान, आठवीं, आलीराजपुर। **सभी ज़िला झाबुआ, म.प्र.।** मानस विश्वकर्मा, तेरह वर्ष; ब्रजकिशोर सोनी, बारहवीं, अभिषेक अग्रवाल, तेरह वर्ष; हरसूद। खुमेश कुमार भोरगा, आठवीं; नेहा पटेल, सात वर्ष; मोहम्मद इकबाल, सोलह वर्ष; मीतू उपाध्याय, चौदह वर्ष; लक्ष्मण अमोल्या, पन्द्रह वर्ष। **सभी खण्डवा, म.प्र.।**

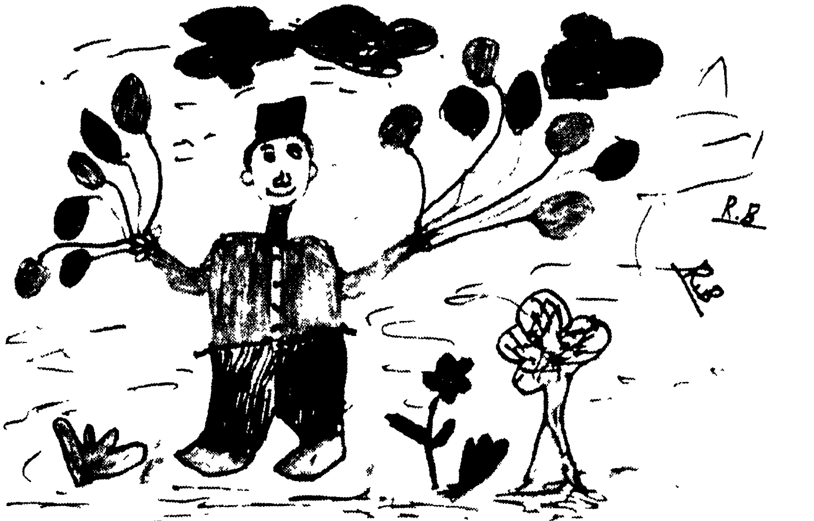
ललित कुशवाहा, ठनगाँव। रूपाली निगम, दसवीं; पानसेमल। दीपक कुमार साँवले, आठवीं, मल्फा। अमित नागजी, दस वर्ष, **बड़वाह।** प्रदीप ताहेड़, दसवीं, बड़वानी। रामलाल भालसे, सोलह वर्ष; दिनेश कुमार भालसे, पन्द्रह वर्ष, छोटी खरगोन। सुनीता अलुने, चौदह वर्ष; ब्रह्मदीप, पन्द्रह वर्ष, निवाली। प्रेमलता जायसवाल, नवमीं, जुलवानिया। मोनिका अलावा, सातवीं, जूनापानी। दीपिका टेलर नामदेव, तीसरी, राजपुर। **सभी ज़िला खरगोन, म.प्र.।** अजीत राय, सोलह वर्ष, गाड़ा सराई। जावेद खान, छठवीं; पुष्पेन्द्र सिंह मरावी, आठवीं, शहपुरा। जोगेन्द्र मरावी, सत्रह वर्ष, कोठानी देवरी। सभी **ज़िला मण्डला, म.प्र.।**

पोकर लाल गौड़, दसवीं; सुरेश मीणा, दसवीं, देसुरी। ताराचन्द देपाल, सिंगपुर। सुगनराम गौड़, बारहवीं, पाली। **ज़िला पाली।** नरेन्द्र सिंह राठौड़, दस वर्ष पूजा राठौड़, सात वर्ष; वन्दना राठौड़, चौदह वर्ष, **पिलानी।** दीपक स्वामी, आठवीं; कपिल स्वामी, नवमीं; मनोज स्वामी, पन्द्रह वर्ष; **चुरू।** मीना पालीवाल, चौथी; महेश पालीवाल, तीसरी; सुरेश पालीवाल; भोले शंकर पालीवाल, तेरह वर्ष, महासतियों की मादड़ी, **राजसमन्द।** सुमित चौधरी, तीसरी; अमित चौधरी, आठ वर्ष; **बीकानेर।** रामप्रसाद मीणा, तेरह वर्ष, अगावली, कमल शर्मा, दसवीं; पिलवोकला; **दौसा।** रविकुमार पंकज, सातवीं, किशनगंज, **बाराँ।** पवन कुमार सेन, तेरह वर्ष, **झालावाड़।** विकास सेठी, बारह वर्ष, लाड़नू, **नागौर।** सुनील सोनी, सोलह वर्ष, बालोदरा, पारसमणी मली, तेरह वर्ष, **बाड़मेर।** आकाश मिड्डा, छठवीं, **गंगानगर।** कादम्बरी अग्रवाल, छठवीं, **जयपुर।** आशू देहरानी, नौ वर्ष; अंकुर, पाँच वर्ष, **जोधपुर।** प्रकाशचन्द्र वैष्णव, तेरह वर्ष, काछोली, **सिरोही।** अखिलेश कुमार, दसवीं, तलहरी, **सवाई माधोपुर। सभी राजस्थान।**

तिरूइया डी जेठुआ, नौवीं, चांजीगढ़; मालम अभाराम, सोलह वर्ष, मालम बमीखाभाई आर, आठवीं, माँगरोल, **जूनागढ़।** गौरव कुमार, सोलह वर्ष, रणछोड़वास, **अहमदाबाद।** वारिया केतन, तेरह वर्ष, गाँधीनगर। विजय कुमार सुथार, **सरसबड़ी खेड़ा।** विश्वेन धीरेन्द्र भाई सोनेजी, सात वर्ष, साकवा, **भरूच।** रावल पोपड़ भाई, **मेहसाणा।** जिग्नेस कुमार हीराभाई, पन्द्रह वर्ष, विपुल कुमार, तेरह वर्ष, नारणपुरा कम्पा, **साबरकाँठा। सभी गुजरात।**



भारतसिंह, छठवीं, धार, म.प्र.



रामविलास, छठवीं, चौकड़ी, खिड़किया, म.प्र.

रेणु कुमारी सिन्हा, बारह वर्ष, मीठापुर; अनीता अग्रवाल, चौदह वर्ष, सालिमपुर, गुड़िया कुमारी, नौ वर्ष, चकछितु, प्रेम कुमार, सोलह वर्ष, अभिमन्यु वर्मा, सत्रह वर्ष; बबलु कुमार, नवमीं, गोपाल अग्रवाल, पन्द्रह वर्ष, **पटना**। विशालसिंह नेगी, तेरह वर्ष, धूरवा; वीरेन्द्र रंजन, तेरह वर्ष, सुमित चौधरी; **राँची**। मल्लिकार्जुन पाण्डे, झगराही; बृजमोहन प्रसाद, पाँचवीं, हीरापुर, **धनबाद**। विनोद कुमार, पन्द्रह वर्ष; संजीव कुमार रजन, सोलह वर्ष, **मधेपुरा**। राज अभिषेक, दस वर्ष, **डुमराँव**। अली असगर खान, **डाल्टनगंज**। मुहम्मद इमामुद्दीन हुसैनी, चौदह वर्ष, पुरन्दरपुर, **सीवान**। खेमचन्द कुमार, ग्यारह वर्ष, छातापुर, **सहरसा**। शक्तिदेव सिंह; परमानन्दसिंह, चुत्री, **सुपौल**। सजय गौड़, **साहिबगंज**। शैलेश श्रीवास्तव, बारह वर्ष, **बक्सर**। गुंजन कुमारी, आठवीं, सहोली, **खगड़िया**। संजयनाथ, पन्द्रह वर्ष, निर्मला कुमारी, पहली, जादोपुर, **गोपालगंज**। **सभी बिहार**।

दानी तादो, चौदह वर्ष, **पापुम पारे**। मूनलोप यंगसेन, पन्द्रह वर्ष, किटपोंग किटनाल, तेरह वर्ष; कपांग टिकुआ, तेरह वर्ष, खरसोंग, **चंगलांग**। जू मोलापिंग, आठवीं, **लोहित**। **सभी अरुणाचल प्रदेश**।

रचना, पन्द्रह वर्ष; निमित गोयल, दस वर्ष, **नाहन; सिरमौर, हिमाचल प्रदेश**।

ममता लाठर, पांचवीं, **जींद**। सुशील गिरधर, पन्द्रह वर्ष, **सिरसा**। प्रदीप चोपड़ा, पाँचवीं, **पानीपत**। **सभी हरियाणा**।

मो. फहीम फम्मू, चौदह वर्ष, मख़्दूमजादा, रुदौली, **बाराबंकी**। प्रीति, हेमलता, तेरह वर्ष, **बद्रीनाथ**। केशव प्रसाद, ग्यारहवीं, जेगहा, **जौनपुर**। मनु पान्डे, चौथी, जाखनदेवी, दयाकृष्ण पान्डे, पाँचवीं; रूपा दुर्गापाल, पाँचवीं, संजयसिंह, आठवीं; **अल्मोड़ा**। अनंतपाल सिंह, सोलह वर्ष, अनुज कुमारसिंह, सत्रह वर्ष, मोहम्मद फैजान, सात वर्ष, संभल, **मुरादाबाद**। संतोष कुमार चतुर्वेदी, पन्द्रह वर्ष, हुसैनाबाद, **बलिया**। नीरज झा, चौथी, मेनका जैन, सत्रह वर्ष, **कानपुर**। परितोष श्रीवास्तव, छठवीं, **उतरौला**। मिथलेश चंद्र थपलियाल, बारह वर्ष, जोशीमठ, **चमोली**। प्रार्थना, तीन वर्ष, कृतिका, पाँच वर्ष; **वाराणसी**। सरताज अहमद, आठवीं, झारीपानी; मोनु जोशी, सात वर्ष; हिमांशु जोशी, छठवीं; **देहरादून**। हेरम्ब आशीष पन्त, पाँच वर्ष; देवोपमा पन्त, सात वर्ष, **उन्नाव**। रामसूरत यादव, तेरह वर्ष, चितावनपुर, अभ्युदसिंह, तेरह वर्ष, इलाहाबाद। देवेश जायसवाल, पाँचवीं, श्रुति जायसवाल, पाँच वर्ष, हाट, **मिर्ज़ापुर**। शुभेन्दु, चौथी, काशीपुर, **नैनीताल**। **सभी उत्तर प्रदेश**।

जगदीश कुमार, **नागपुर**। रवि आहुजा, सोलह वर्ष, **अकोला**। जयकुमार, चौदह वर्ष, उल्हास नगर, **थाना**। महेश दामोदर सरोलकर, **यवतमाल**। शिवकुमार दलाल, छठवीं, दहीसर, **बम्बई**। **सभी महाराष्ट्र**।

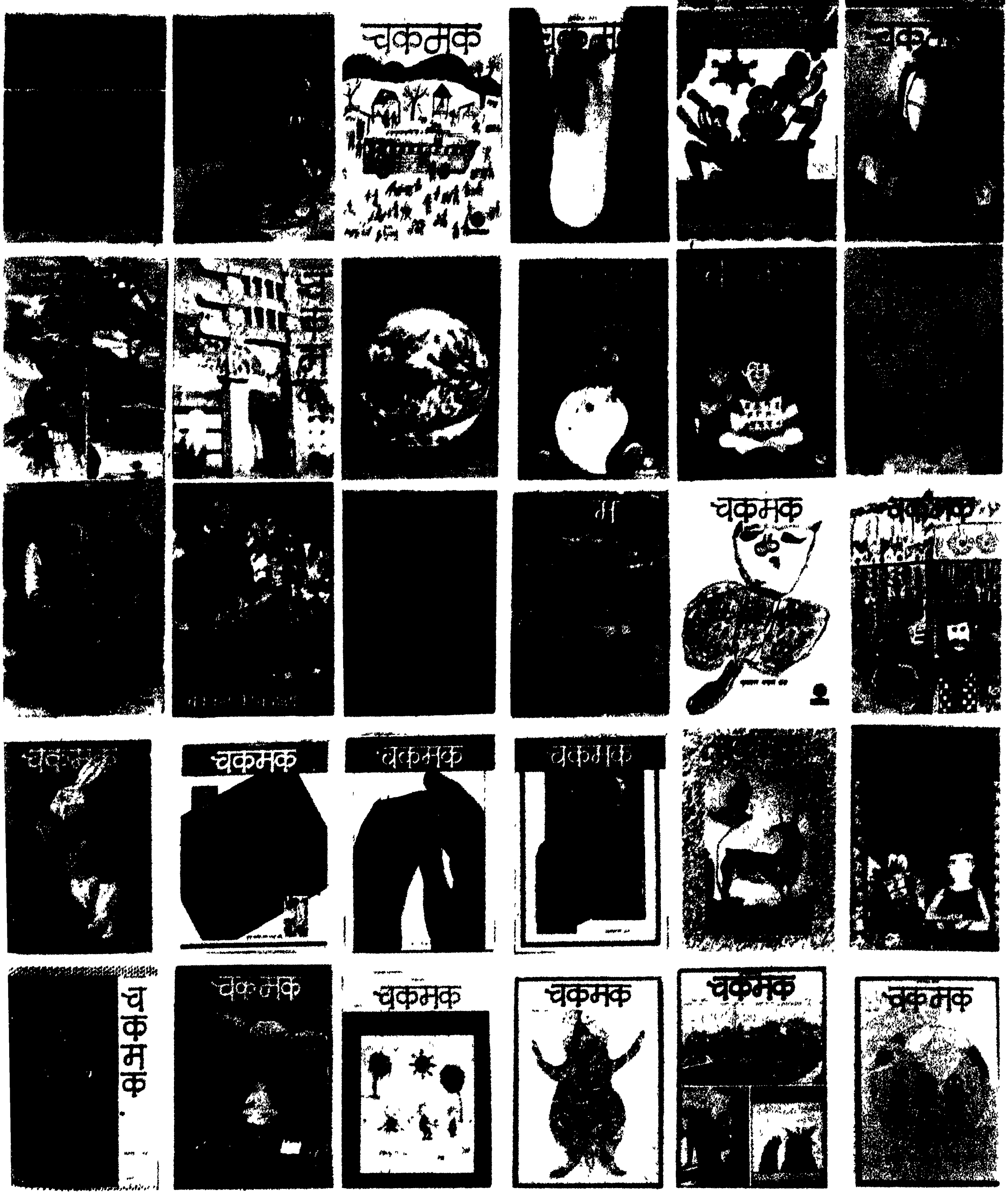
सन्दीप, ग्यारह वर्ष; मन्दीप कुमार, चौदह वर्ष; नया नंगल, **रोपड़**। **सभी पंजाब**। प्रशांत शर्मा, तेरह वर्ष; **दार्जीलिंग, पश्चिम बंगाल**।

ईशा वालिया, चौथी; अदिति कपूर, नौवीं, अंजुम, पन्द्रह वर्ष; निगार नफीस, ग्यारह वर्ष; मानवी प्रिया, चौथी; कमलेश कुमारी, चौदह वर्ष; हैप्पी कुमार गाँधी, छठवीं; जगदीश कुमार, दसवीं; अंजुम, सोलह वर्ष; अमित कुमार, पाँचवीं; निधि कपाही, बारह वर्ष; पूनम उपाध्याय, पन्द्रह वर्ष; पूजा मिश्रा, बारह वर्ष; श्वेता त्यागी, चौदह वर्ष; पुनीता उपाध्याय, तेरह वर्ष; रजनीश, तीसरी; श्वेता खिंची, तेरह वर्ष; जसदीपसिंह, दस वर्ष; मंजुषा, बारह वर्ष; रवि, सात वर्ष; मोना, नौ वर्ष; सरिता कुमारी, सातवीं; बबीता, छठवीं; आनन्द कुमार, तेरह वर्ष; दिनेश कुमार, छठवीं; निहारिका चन्दोला, चौथी; विभारिका चन्दोला, पहली। **सभी दिल्ली**।

आवरण परिचय

प्रवेशांक यानी जुलाई, 85 से चकमक नियमित रूप से प्रकाशित होती रही है, केवल सितम्बर, 87 के एक अंक को छोड़कर। अब तक प्रकाशित निन्यानवें अंकों के मुखपृष्ठ यहाँ दिए गए हैं। इस पृष्ठ पर पहले अंक से बत्तीसवें अंक तक, पिछले आवरण पर तैंतीसवें अंक से अड़सठवें अंक तक और मुख्य आवरण पर उनहत्तरवें अंक से अब तक के अंकों के मुखपृष्ठ चित्र हैं। अंकों का क्रम बाँए से दाँए है।






चकमक
12666
खून का लेन-देन
नमक